बिजनेस स्टडीज - 12

लघु उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न 1. टेलर द्वारा दिए गए वैज्ञानिक प्रबंधन के सिद्धान्तों की व्याख्या करें। [NCERT]

अथवा

वैज्ञानिक प्रबन्ध से आप क्या समझते हैं? इसके सिद्धान्तों की संक्षेप में विवेचना कीजिए।

उत्तर- वैज्ञानिक प्रबन्ध का अर्थ--- वैज्ञानिक प्रबन्ध का शाब्दिक अर्थ होता है–प्रबन्ध को वैज्ञानिक ढंग से करना अर्थात् प्रबन्ध की रूढ़िवादी विचाराधाराओं को छोड़कर आधुनिक वैज्ञानिक विचारधाराओं का प्रयोग करना। इस सम्बन्ध में टेलर ने कहा है कि प्रबन्धकों को कोई भी कार्य करने से पहले उसका इस सम्बन्ध में गहन विश्लेषण करना चाहिए और उसी के आधार पर ही निर्णय लेना चाहिए ।

टेलर के वैज्ञानिक प्रबन्ध के सिद्धान्त

टेलर के शब्दों में, "वैज्ञानिक प्रबंध यह जानने की कला है कि आप श्रमिकों से क्या काम कराना चाहतेहै और फिर यह देखना कि वे उसको सर्वोत्तम ढंग एवं कम-से-कम लागत पर करे"

(i) विज्ञान पद्धति न कि अंगूठा टेक नियम--- टेलर द्वारा प्रबंध के क्षेत्र में वैज्ञानिक पद्धति को लागू करने की पहल की गई क्योंकि अब सभी प्रबंधको द्वारा अपने-अपने अंगूठा टेक नियमों को अपनाया जाएगा, अत: स्वभावतः सभी समान रूप से प्रभावी नही होंगे । टेलर का विश्वास था कि अत्यधिक कार्यक्षमता में वृद्धि ही एकमात्र सर्वोत्तम विधि थी। अध्ययन एवं विशलेषण के द्वारा ही इस पद्धति को विकसित किया जा सकता है। अत: इस प्रकार से विकसित पद्धति को पूरे संगठन में 'अँगूठा टेक नियम' के स्थान पर लागू करना चाहिए।

(ii) सहयोग न कि टकराव--- प्रबंधक. उत्पादन की कारखाना प्रणाली में मालिक एवं श्रमिको के बिच की कड़ी होते हैं। प्रबंधकों को श्रमिकों से कार्य पर्ण कराने का अधिकार होता है। अत: इस कारण परस्पर टकराव को सदैव सम्भावना बनी रहती है। टेलर ने प्रबन्ध एवं श्रमिकों के बीच पूरी तरह से सहयोग पर बल दिया। उन्होंने ऐसी स्थिति को मानसिक क्रान्ति का नाम दिया। उनका कहना था कि लाभ की दशा में प्रबन्धकों को उसे कर्मचारियों में बाँटना चाहिए तथा श्रमिकों को भी चाहिए कि वह कम्पनी की भलाई के लिए परिश्रम करें। इससे दोनों वर्ग लाभान्वित होंगे।

(iii) सहयोग, न कि व्यक्तिवाद---- श्रम व प्रबंध में व्यक्तिवाद के स्थान पर पूर्णरूप से सहयोग होना चाहिए। यह सहयोग, न कि टकराव के सिद्धांत का विस्तार है। अत: प्रतियोगिता के स्थान पर

सहयोग होना चाहिए। दोनों को यह समझना चाहिए कि दोनों को एक-दूसरे की जरूरत है। इसके लिए जरूरी है कि यदि कर्मचारियों की ओर से कोई रचनात्मक सुझाव आता है, तो उस पर ध्यान देना चाहिए। यदि उनके सुझावों से लागत में ह्रास आता है, तो उन्हें इसका पुरस्कार अथवा सम्मान राशि मिलनी चाहिए। उनकी प्रबंध में साझेदारी होनी चाहिए तथा जब भी कोई महत्त्वपूर्ण निर्णय लिया जाए तो श्रमिकों को आश्वासन में लेना चाहिए।

(iv) प्रत्येक व्यक्ति का उसकी अधिकाधिक क्षमता एवं समृद्धि के लिए विकास--- औद्योगिक कार्यक्षमता अधिकतर कर्मचारियों की योग्यताओं पर निर्भर होती है। वहीं कर्मचारियों के विकास को वैज्ञानिक प्रबंध भी मान्यता देता है। वैज्ञानिक विधि से कार्य करने के परिणामतः जिस सर्वश्रेष्ठ पद्धति को विकसित किया गया, उसको सीखने के लिए कर्मचारियों का प्रशिक्षण आवश्यक था। टेलर के विचारानुसार, कार्यकुशलता की बुनियाद कर्मचारी की चयन-प्रक्रिया में ही पड़ जाती है। अतः प्रत्येक व्यक्ति का चयन वैज्ञानिक रीति के अनुसार होना चाहिए। जो कार्य उसे सौंपा जाए वह उसकी शारीरिक, मानसिक तथा बौद्धिक योग्यताओं के अनुसार होना चाहिए। उनकी कार्यक्षमता में बढ़ोतरी हेतु उन्हें आवश्यक प्रशिक्षण भी प्राप्त होना चाहिए।

ऊपर किए गए विवेचन से स्पष्ट होता है कि टेलर व्यवसाय के उत्पाद में वैज्ञानिक पद्धति के परम्परावादी समर्थक थे।

प्रश्न 2. 'सोपान शृंखला' और 'समतल संपर्क के सिद्धान्त की व्याख्या करें। [NCERT]

उत्तर- सोपान श्रृंखला-किसी भी संगठन में उच्चाधिकारी तथा अधीनस्थ कर्मचारी होते हैं। उच्चतम पद से निम्नतम पद तक की औपचारिक अधिकार रेखा को 'सोपान श्रृंखला' कहा जाता है। फेयोल के अनुसार, संगठनों में सम्प्रेषण तथा अधिकार की श्रृंखला होनी आवश्यक है, जो ऊपर से नीचे तक हो और उसी के अनुसार प्रबंधक व अधीनस्थ भी होने आवश्यक हैं।

आइए एक स्थिति पर दष्टि डालते हैं जिसमें एक अध्यक्ष है तथा जिसके नियंत्रण में दो अधिकार श्रृंखलाएं है। एक श्रृंखला में 'ख'ग' 'घ' ड् ''च' तथा दसरी श्रंखला में 'छ' 'ज' 'झ' 'ञ' एव 'त' है यदि ड् को 'ञ' से संप्रेषण करना है तो उसे ड् घ ग ख क छ. ज. झ. 'ञ' के मार्ग से चलाना होगा क्यों की यहाँ पर सोपान श्रृंखला के सिद्धांत का पालन हो रहा है।

समतल संपर्क--- यह सोपान श्रृंखला के सिद्धान्त का अपवाद है।

फेयोल के अनुसार, औपचारिक संप्रेषण में इस श्रृंखला का उल्लंघन नहीं करना चाहिए। यदि कोई अप्रासंगिक स्थिति है तो "ड' सीधे 'ब' से समतल संपर्क द्वारा संपर्क कर सकता है। जैसा कि चित्र में प्रदर्शित किया गया है। यह एक छोटा रास्ता है और इसका प्रावधान इस कारण किया गया है, जिससे

संप्रेषण में विलंब न हो। व्यावहारिक तौर पर देखा जाता है कि कोई श्रमिक सीधे तौर पर मुख्य कार्यकारी अधिकारी से संपर्क नहीं कर सकता। यदि उसे आवश्यकता है भी तो सभी औपचारिक स्तर अर्थात् फोरमैन अधीक्षक, प्रबंधक, निदेशक आदि को विषय से सम्बद्ध ज्ञान होना चाहिए। एक श्रमिक केवल अप्रासंगिक परिस्थितियों में ही मुख्य कार्यकारी अधिकारी से सम्पर्क कर सकता है।

प्रश्न 3. टेलर द्वारा अनुमोदित 'कार्यात्मक फोरमैनशिप' की तकनीक और 'मानसिक क्रांति' की अवधारणा की व्याख्या करें। [NCERT]

उत्तर- टेलर द्वारा अनुमोदित 'कार्यात्मक फोरमैनशिप' की तकनीक

कारखाना प्रणाली के अन्तर्गत 'फोरमैन' वह प्रबंधक होता है, जिसके सीधे सम्पर्क में प्रतिदिन श्रमिक आते हैं। फोरमैन निम्नतम स्तर का प्रबंधक तथा उच्चतम श्रेणी का श्रमिक होता है। फोरमैन एक प्रकार से केन्द्र-बिंदु होता है, जिसके चारों ओर सम्पूर्ण क्रियान्वयन, उत्पादन नियोजन तथा नियंत्रण घूमता है। टेलर द्वारा कारखाना ढाँचे में इस भूमिका के कार्यान्वयन के सुधार पर विशेष ध्यान दिया गया। निस्संदेह टेलर ने अच्छे व कुशल फोरमैन अथवा पर्यवेक्षक की योग्यताओं की, परन्तु उसने पाया कि कोई भी व्यक्ति इनको पूर्ण नहीं कर सका, इस कारण उन्होंने आठ व्यक्तियों के द्वारा क्रियात्मक फोरमैनशिप का सुझाव दिया। टेलर द्वारा नियोजन व उसके क्रियान्वयन को पृथक्-पृथक् रखने का पक्ष लिया तथा इस अवधारणा को कारखाने के निम्नतम स्तर पर बढ़ा दिया गया, जो 'क्रियात्मक फोरमैनशिप' कहलाती है। योजना अधिकारी व उत्पादन अधिकारी कारखाना प्रबंधक के अधीन थे। वहीं नियोजन अधिकारी के नियंत्रण में चार कर्मचारी (कार्यक्रम क्लर्क, निर्देशन कार्ड क्लर्क, समय तथा लागत क्लर्क और कार्यशाला अनुशासक) कार्य कर रहे थे। यह चारों कर्मचारी क्रमश: उत्पादन का कार्यक्रम तैयार करेंगे, कर्मचारियों के लिए निर्देश तैयार करेंगे, समय व लागत की सूची तैयार करेंगे तथा अनुशासन को सुनिश्चित करेंगे। वहीं उत्पादन अधिकारी के नियन्त्रणाधीन जो कर्मचारी कार्य करेंगे: उनमें टोलीनायक, गतिनायक, मरम्मतनायक तथा निरीक्षक शामिल हैं। ये सभी कर्मचारी क्रमशः श्रमिकों द्वारा मशीन उपकरणों को कार्य के योग्य रखने, कार्य-समय ठीक से तैयार करने तथा कार्य की गुणवत्ता को जाँचने के लिए उत्तरदायी हैं। प्रायः क्रियात्मक फोरमैनशिप श्रम के विभाजन तथा विशिष्टीकरण के सिद्धांत का निम्नतम स्तर तक विस्तार है। अत: संगठन के प्रत्येक श्रमिक को उत्पादन कार्य अथवा इससे संबंधित प्रक्रिया के लिए इन आठ फोरमैनों से निर्देश लेने होंगे। फोरमैन में शिक्षा, बुद्धि चातुर्य, निर्णय, स्थिरता, शारीरिक दक्षता व ऊर्जा, विशिष्ट ज्ञान, ईमानदारी तथा उत्तम स्वास्थ्य जैसे गुण होने आवश्यक हैं। अत: ये सभी गण किसी एक व्यक्ति में मिलना असंभव है, इसलिए टेलर ने आठ विशेषज्ञों की टीम गठित करने का सहयात दिया।

प्रत्येक विशेषज्ञ को उसकी योग्यता के अनुसार ही कार्य का दायित्व सौंपा जाता है। उदाहरण के लिए-जो लोग तकनीक में सिद्धस्थ, बुद्धिमान तथा स्थिर मस्तिष्क के हैं, उनको नियोजन सम्बंधी कार्य सौंपा जा सकता है। वहीं जो लोग ऊर्जावान व उत्तम स्वास्थ्य लिए हैं, उनको क्रियान्वयन संबंधी कार्य सौंपा जा सकता है।

मानसिक क्रान्ति

इसके विवरण के लिए अतिलघु उत्तरीय प्रश्न में 10 का उत्तर देखें।

प्रश्न 4. टेलर और फेयोल के योगदान के बीच विभिन्नताओं पर चर्चा करें। [NCERT]

उत्तर--- फेयोल बनाम टेलर-तुलना

अब आप टेलर व फेयोल के योगदान का आधार बने हुए हैं। अत: यह ध्यान रखना आवश्यक है कि इनका योगदान तुलना करने की स्थिति में है। दोनों का प्रबंध के क्षेत्र में योगदान एक-दूसरे का पूरक है। आप निम्नलिखित बिंदुओं का अध्ययन करके प्रबंध के लिए इनके द्वारा किए गए योगदान में अंतर कर सकते हैं----

क्रम सं.	अंतर का आधार	एल० डब्ल्यू० टेलर	हेनरी फेयोल
1	परिप्रेक्ष्य स्तर	कारखाने का	प्रबंध का उच्चतम फशीय स्तर
2	आदेश की एकता	इसको महत्त्वपूर्ण नहीं माना क्योंकि कार्यात्मक फोरमैनशिप में एक श्रमिक आठ विशेषज्ञों से आदेश प्राप्त करता है।	कट्टर पक्षधर
3	प्रयोजनीयता	विशिष्ट स्थितियों में उपयुक्त	सार्वभौमिक उपयुक्तता
4	रचना का आधार	अवलोकन	व्यक्तिगत अनुभव परीक्षण
5	केंद्र (फोकस)	उत्पादकता में वृद्धि करना	कुल प्रशासन में सुधार लाना
6	व्यक्तित्व	वैज्ञानिक	क्रियान्वयक
7	अभिव्यक्ति सिद्धांत	वैज्ञानिक	प्रशासन के सामान्य प्रबंध

प्रश्न 5. टेलर के गति अध्ययन तथा समय अध्ययन को उदाहरण द्वारा स्पष्ट करें।

उत्तर--- गति अध्ययन

लघु उत्तरीय प्रश्न संख्या 8 से अध्ययन करें।

समय अध्ययन

यह मानक सही से परिभाषित कार्य को पर्ण करने के लिए समय का निर्धारण करता है। समय मापन विधियों का प्रयोग कार्य के प्रत्यक घटक के लिए किया जाता जाता है। कई बार मापन करके सम्पूण कार्य का मानक समय

निश्चित किया जाता है। समय अध्ययन की पद्धति कार्य को मात्रा व बारम्बारता.समय मापन तथा परिचालन कसायन की लागत पनि कती समय अध्ययन के महत्त्वपूर्ण उददेश्य उपयुक्त प्रेरक योजनाओ को तैयार करना श्रम लागत को निर्धारित करना तथा कर्मियों की संख्या का निर्धारण करना होता है। 'लए बार-बार के पर्यवेक्षण से यह निर्धारित किया गया कि एक कार्ड बोर्ड के बॉक्स को तैयार करने के लिए एक कर्मचारी का मानक समय 20 मिनट है। इस प्रकार वह कर्मचारी 60 मिनट में तीन बोक्स तैयार करेगा यह मानते हैं कि एक श्रमिक एक पारी में 8 घंटे कार्य करता है जिसमें से 60 मिनट दोपहर के भोजन व आराम का निकाल देते हैं। इस प्रकार वह श्रमिक तिन बॉक्स प्रति घंटे की दर से 7 घंटे के कार्य में वह 21 बॉक्स तैयार करेगा। अत: यह एक कर्मी का मानक कार्य हुआ तथा इसके अनुसार ही मजदूरी को निर्धारित किया जाएगा।

प्रश्न 6. फेयोल द्वारा दिए गए प्रबंधन के निम्नलिखित सिद्धान्तों की उदाहरण सहित व्याख्या करे-- [NCERT]

(क) निर्देश की एकता

(ख) समता

(ग) सहयोग की भावना

(घ) व्यवस्था

(ङ) केन्द्रीकरण एवं विकेन्द्रीकरण

(च) पहल-क्षमता

उत्तर- (क) निर्देश की एकता---- निर्देश की एकता से अभिप्राय यह है कि क्रियाओं के प्रत्येक समूह के लिए, जिनका समान उद्देश्य हो, एक ही अध्यक्ष एवं एक ही योजना होनी चाहिए। उदाहरण के लिए, यदि एक कम्पनी मोटरसाइकिल और कार का उत्पादन कर रही है तो उसे इसके लिए दो अलग-

अलग विभाग बनाने चाहिए तथा प्रत्येक विभाग का अपना एक प्रभारी, योजना और संसाधन होने चाहिए। दोनों विभागों के कार्य भी एक-दूसरे पर आधारित नहीं होने चाहिए।

(ख) समता– यह सिद्धान्त प्रबन्धकों के श्रमिकों के प्रति निष्पक्ष व्यवहार एवं न्याय पर बल देता है। किसी

भी व्यक्ति के साथ लिंग, धर्म, भाषा, जाति, विश्वास अथवा राष्ट्रीयता आदि के आधार पर कोई पक्षपात नहीं होना चाहिए। सुस्त व्यक्तियों के साथ सख्ती से व्यवहार करना चाहिए जिससे कि ऐसा प्रतीत हो कि प्रबन्ध की निगाहों में सभी व्यक्ति समान हैं। उदाहरण के लिए, एकसमान पद पर यदि कई श्रमिक कार्यरत हैं और उनको वेतन भी समान दिया जाता है लेकिन उनमें से एक श्रमिक जो प्रबन्धक का रिश्तेदार है, माह में अधिक अवकाश लेता रहता है तथा अन्य श्रमिकों से आधा उत्पादन कार्य करता है तो इस सिद्धान्त के अनुसार उसे कम मजदूरी दी जानी चाहिए।

(ग) सहयोग की भावना---- फेयोल के शब्दों में, "प्रबंध को कर्मचारियों में एकता एवं पारस्परिक सहयोग की भावना को बढ़ावा देना चाहिए।" प्रबंध के सामूहिक कार्य को प्रोत्साहन देना चाहिए विशेषत: बड़े स्तर के संगठनों में क्योंकि ऐसा नहीं करने पर उद्देश्यों को प्राप्त करना कठिन कार्य हो जाएगा जिससे समन्वय की भी हानि होगी। प्रबंधक को सहयोग की भावना के लिए कर्मचारियों से परे वार्तालाप में 'मैं' के स्थान पर 'हम' शब्द का प्रयोग करना चाहिए। इससे समूह के सदस्यों में अपनेपन तथा पारस्परिक विश्वास की भावना उत्पन्न होगी, जिससे अर्थदण्ड की आवश्यकता भी कम हो जाएगी। उदाहरण के लिए, प्रबन्धक को अपने अधीनस्थों के सामने यह कहना चाहिए कि 'हम सब मिलकर यह कार्य करेंगे' न कि 'मैं यह कार्य करूँगा।

(घ) व्यवस्था–--इसके विवरण के लिए अतिलघु उत्तरीय प्रश्न में प्रश्न 6 का उत्तर देखें।

(ङ) केन्द्रीकरण एवं विकेन्द्रीकरण--- इसके विवरण के लिए अतिलघु उत्तरीय प्रश्न में प्रश्न 9 का उत्तर देखें।

(च) पहल-क्षमता---- फेयोल के अनसार, "कर्मचारियों के सुधार हेतु अपनी योजनाओं के विकास तथा उनको लागू करने के लिए प्रोत्साहन देना चाहिए।" पहल-क्षमता से तात्पर्य है-स्वयं उददेश्य की दिशा में प्रथम कदम उठाना। इसके अंतर्गत योजना पर विचार करके उसका क्रियान्वयन किया जाता है, जो एक बुद्धिमान व्यक्ति की विशेषताओं में से एक है। प्रायः पहल-क्षमता को प्रोत्साहित करना चाहिए परंत इसका तात्पर्य यह नहीं कि स्वयं को कुछ असमान दिखान कलिए कम्पनी द्वारा स्थापित रीति-नीति के विपरीत कार्य करें। एक अच्छी कंपनी वह हाता है, जिसम कर्मचारी द्वारा सझाव-पद्धतियाँ हैं, जिसके अनसार उस पहल-क्षमता सुझावों को पुरस्कृत किया जाता है जिनके कारण लागत अथवा समय में दृढ़ रूप से कमी आए।

प्रश्न 7. प्रबन्ध के सिद्धान्तों के महत्त्व को समझाइए।

अथवा

प्रबन्ध के सिद्धान्तों के महत्त्व के संबंध में किन्हीं चार बिन्दुओं की व्याख्या करें। [NCERT]

उत्तर- प्रबन्ध के सिद्धान्तों के महत्त्व को निम्नलिखित बिन्दुओं द्वारा समझा जा सकता है---

(क) प्रबंधकों को वास्तविकता का उपयोगी सूक्ष्म ज्ञान प्रदान करना----- प्रबंध के सिद्धांत प्रबंधकों को वास्तविक लौकिक स्थिति में उपयोगी पैंठ करवाते हैं। इन सिद्धांतों को ग्रहण करने से उनकी प्रबंधकीय स्थिति तथा परिस्थितियों के संबंध में योग्यता.समझ व ज्ञान में बढ़ोतरी होगी। इससे प्रबंधक अपनी पूर्व की गलतियों से कछ सीखेगा तथा बार-बार सामने आने वाली कठिनाइयों का तेजी से समाधान कर समय की बचत करेगा। इस प्रकार प्रबंध के सिद्धांत ही प्रबंध की क्षमता में वृद्धि करते हैं। उदाहरण के लिए-एक प्रबंधक दिन-प्रतिदिन के निर्णय अधीनस्थों के लिए छोड़ सकता है और स्वयं असामान्य कार्यों को करेगा, जिसके लिए उसे अपनी विशेषज्ञता की जरूरत होगी। प्रायः इसके लिए प्रबंधक अधिकार-अंतरण के सिद्धांत का पालन करेगा।

(ख) संसाधनों का अधिकतम उपयोग एवं प्रभावी प्रशासन--- प्राय: किसी कंपनी को उपलब्ध भौतिक व मानवीय संसाधन सीमित होते हैं, जिनका अत्यधिक उपयोग करना होता है। यहाँ इनके अत्यधिक उपयोग से तात्पर्य है कि इन संसाधनों का इस प्रकार से उपयोग किया जाए, जिससे कम-से-कम लागत पर अत्यधिक लाभ अर्जित हो सके। प्रबंधक इन सिद्धांतों की सहायता से अपने कार्यों व निर्णयों में कारण व परिणाम के सम्बंध का भावी अनुमान लगा सकते हैं, जिससे गलतियों से शिक्षा ग्रहण करने की नीति में होने वाले नुकसान से बचा जा सकता है। प्रायः प्रभावी प्रशासन के लिए प्रबंधकीय व्यवहार का व्यतिकरण जरूरी है, जिससे प्रबंधकीय अधिकारों का सुविधानुसार उपयोग किया जा सके। प्रबंध के सिद्धांत, प्रबंध में स्वच्छन्दता की सीमा का निर्धारण करता है, जिससे प्रबंधकों के निर्णय व्यक्तिगत स्वार्थ एवं भेदभाव से मक्त रहें। उदाहरण के लिए विभिन्न विभागों के लिए वार्षिक बजट के सीमांकन में प्रबंधकों द्वारा निर्णय उनकी व्यक्तिगत इच्छा पर निर्भर करने के स्थान पर संगठन के उद्देश्यों के प्रति सहयोग के सिद्धांत पर आधारित होते हैं।

(ग) वैज्ञानिक निर्णय--- निर्णय, निर्धारित उद्देश्यों के रूप में न्यायसंगत तथा विचारणीय तथ्यों पर आधारित होने चाहिए। यह समयानकल, वास्तविक व मापन और मूल्यांकन के योग्य होने चाहिए। सिक साथ हा प्रबंध के सिद्धांत विचारपूर्ण निर्णय लेने में सहायक होने चाहिए। प्रबंध के जिन निको को सिद्धांतों के अनुसार लिया जाता है वह पक्षपात व व्यक्तिगत द्वेष की भावना से स्वतंत्र होते हैं। यह परिस्थिति के तर्कसम्मत मल्यांकन पर आधारित हात हा

(घ) बदलती पर्यावरण की आवश्यकताओं को पूर्ण करना---- प्रायः सिद्धांत सामान्य दिशा-निर्देश प्रकृति के होते हैं लेकिन इनमें परिवर्तन होता रहता है, जिससे यह प्रबंधकों की पर्यावरण पर बदलती जरूरतों को पूर्ण करने में सहायक भी होते हैं। आप जानते हैं कि प्रबंध के सिद्धांत लोचशील होते हैं. जिन्हें व्यावसायिक पर्यावरण के अनसार ढाला जा सकता है।

(ड) सामाजिक उत्तरदायित्वों को परा करना---- जनता में बढ़ती जागरूकता व्यवसायों तथा सिमित दायित्व वाली कम्पनियों को अपने सामाजिक उत्तरदायित्वों को निभाने के लिए बाध्यकरी रही है इस प्रकार की माँगों के परिणामस्वरूप ही प्रबंध के सिद्धांत एवं प्रबंध का ज्ञान विकसित हुआ है तथा समयानुरूप सिद्धांतों की व्याख्या से इनके नए व समकालीन अर्थ निकल रहे हैं। इस कारण यति कोई समता की बात करता है. तो यह मजदूरी के संबंध में ही नहीं होती। यह सिद्धांत ग्राहक के लिए मूल्यवान, पर्यावरण का ध्यान रखना तथा व्यवसाय के सहयोगियों के व्यवहार पर भी लागू होता है।

(च) प्रबंध प्रशिक्षण, शिक्षा एवं अनसंधान----- प्रबंध-विषय के ज्ञान का मूल आधार प्रबंध के सिद्धांत हा है, जिनका उपयोग प्रबंध के शिक्षण, शिक्षा व अनुसंधान के आधार के रूप में किया जाता है। प्रायः यह सिद्धात ही प्रबंध को एक शास्त्र के रूप में विकसित करने का शुरुआती आधार तैयार करते है पेशेवर विषय; जैसे-बैचलर ऑफ बिजनेस एडमिनिस्ट्रेशन (BBA) तथा मास्टर ऑफ बिजनेस एडमिनिस्ट्रेशन (MBA) में भी इन सिद्धांतों को प्रारम्भिक स्तर के पाठ्यक्रम के भाग के रूप में पढ़ाया जाता है। प्रायः यह सिद्धांत भी प्रबंध में विशेषता लाते हैं तथा प्रबंध की नवीनतम तकनीकों के विकास में सहायता प्रदान करते हैं। इन सिद्धांतों में अत्यधिक अनुसंधान के कारण ही परिचालन अनसंधान लागत लेखाकन तथा समय पर कैनबन एवं केजन जैसी तकनीकों का विकास हुआ है।

प्रश्न 8. वैज्ञानिक कार्य अध्ययन में निम्नलिखित की चर्चा करें---[NCERT]

(क) समय अध्ययन

(ख) गति अध्ययन

(ग) थकान अध्ययन

(घ) कार्यविधि अध्ययन

(ङ) कार्य का प्रमापीकरण और सरलीकरण

उत्तर- (क) समय अध्ययन--- समय अध्ययन में यह निश्चित किया जाता है कि किसी भी कार्य को छोटे-छोटे भागों में बाँटकर करने पर उसके करने में अधिक से अधिक कितना समय लगना चाहिए।

प्राय: समय अध्ययन गति (मुद्रा) अध्ययन के उपरान्त ही करते हैं। इस अध्ययन के लिए कुछ विधियों का प्रयोग किया जा सकता है। इनमें से सबसे सरल विधि स्टॉपवॉच के प्रयोग की विधि है। इस विधि में प्रत्येक उप-क्रिया और चेष्टा में लगने वाले समय को एक स्टॉप-वाच के प्रयोग द्वारा लिख लेते हैं। याद रहे कि समय अध्ययन करते समय, जिस श्रमिक के समय को समय-मान स्थापित करने के लिए लिखा गया है। उसकी कार्यक्षमता औसत दर्जे की होनी चाहिए तथा यह भी देखना चाहिए कि यह समय असाधारण परिस्थितियों से प्रभावित न हो। इस अध्ययन के मुख्य उद्देश्य इस प्रकार हैं–

(i) श्रम लागत का अनुमान लगाना, (ii) वांछित श्रमिकों की संख्या का निर्धारण करना एवं (iii) उपयुक्त प्रेरणा योजना का निर्धारण करना।

(ख) गति अध्ययन--- इसके अंतर्गत विभिन्न मुद्राओं को गति (जो किसी विशेष प्रकार के कार्य को करने हेतु की जाती है) का अध्ययन किया जाता है; जैसे-रखना, उठाना, बैठना या स्थान बदलना आदि । व्यर्थ के प्रयासों को समाप्त किया जाता है, जिससे कार्य को भली-भाँति पुर्ण करने में अल्प समय लगता है। उदाहरण के लिए-टेलर व उनका सहयोगी फ्रैंक गिलबर्थ, ईट बनाने के प्रयासों को 18 से 5 तक घटा लाए। टेलर ने पाया कि इस प्रक्रिया के उपयोग से उत्पादकता में चार गुना व्रद्धी हुई है ।

यदि शरीर की मुद्राओं का अध्ययन सूक्ष्मता से किया जाए, तो ज्ञात होगा कि---

(i) उत्पादक मुद्राएँ, (ii) प्रासंगिक चेष्टाएँ (जैसे–स्टोर तक जाना) (iii) अनुत्पादक मुद्राए ---

इस प्रकार टेलर ने विभिन्न मुद्राओं की पहचान करने के लिए स्टॉपवॉन विभिन्न रंगों व चिन्हों का प्रयोग किया गति अध्ययन की सहायता से टेलर ने ऐसे उपकरणों को डिजाइन किया जो श्रमिकों को उनके प्रयोग के संबंध में शिक्षित करने में उपयुक्त थे। अतः इसके जो परिणाम निकलकर सामने आए, वह निस्संदेह अद्भुत थे।

(ग) थकान अध्ययन---प्राय: कोई भी व्यक्ति काम करते-करते शारारिक व मानसिक रूप से थकान महसूस करने लगेगा। वहीं समय-समय पर आराम मिलते ही व्यक्ति आंतरित बल पुनः प्राप्त करके पूर्वक्षमता से कार्य कर सकेगा तथा इससे उत्पादकता में वृद्धि होगी। इस प्रकार थकान अध्ययन किसी कार्य को पुर्ण करने के लिए आराम के अंतराल की अवधि तथा बारम्बारता का निधारण करता है उदाहरण के लिए किसी संयंत्र के अन्तर्गत सामान्य तौर पर 8 घण्टे की एक पारा के हिसाब से तीन पारियों में काम होता है। यदि कार्य एक पारी में हो रहा है. तो श्रमिक को भोजन आदि के लिए कुछ आराम का समय अवश्य देना होगा। यदि कार्य भारी शारीरिक श्रम वाला है, तो श्रमिक को बहुत-सा बार अल्पविधि का आराम अवश्य देना होगा जिससे श्रमिकों की ऊर्जा की क्षतिपूर्ति हो जाए और वह अपना अधिक-से-अधिक सहयोग दे सकें।

थकान के बहुत-से कारण होते हैं; जैसे-अनपयक्त कार्य करना, लंबे कार्य के घण्टे, कार्य की अनुपयुक्त परिस्थितियाँ अथवा अपने अधिकारी से संबंधों में माधर्य की कमी आदि। अच्छे कार्य के कार्यान्वयन में आने वाली कठिनाइयों को दूर कर देना चाहिए।

(घ) कार्यविधि अध्ययन---- इस अध्ययन के लिए सर्वप्रथम उत्पादन की सभी प्रक्रियाओं का सर्वांगिक परीक्षण किया जाता है और फिर उसी के आधार पर एक ऐसा प्रक्रिया चार्ट बनाते हैं जिसमें इन सभी प्रक्रियाओं के क्रमागत विकास को आरम्भ से अन्त तक दिखाया जाए। इसके पश्चात् प्रबन्धक सामग्री के आवागमन की दूरी को कम-से-कम करने तथा सामग्री को उठाने-रखने, एक स्थान से दूसरे स्थान तक लाने-ले जाने, निरीक्षण करने तथा संग्रह करने आदि के तरीकों में सुधार करने के लिए आवश्यक कदम उठाए जाते हैं। इस अध्ययन का मुख्य उद्देश्य उत्पादन लागतों को निम्न तथा गुणवत्ता व उपभोक्ता सन्तुष्टि स्तर को अधिकतम करना है।

(ङ) कार्य का प्रमापीकरण और सरलीकरण---- टेलर प्रमापीकरण का जबर्दस्त समर्थक था। टेलर के अनुसार, अंगूठा टेक नियम में उत्पादन पद्धतियों के विश्लेषण हेतु वैज्ञानिक पद्धति का उपयोग करना चाहिए। किसी सर्वोत्तम प्रणाली को प्रमाप के विकास हेतु सुरक्षित रखा जा सकता है और उसमें और भी सुधार किए जा सकते हैं, जिसका उपयोग पूरे संगठन में किया जाना चाहिए। प्रायः इसे कार्य अध्ययन तकनीकों के द्वारा किया जा सकता है जिसके अंतर्गत समय अध्ययन, थकान अध्ययन, कार्यविधि अध्ययन तथा गति अध्ययन शामिल हैं। इनका वर्णन इसी अध्याय में किया गया है। अत: ध्यान रहे कि कार्य का प्रमापीकरण व्यावसायिक प्रक्रिया के समतुल्य तकनीक पुनः इंजीनियरिंग, कैमेन (निरंतर सुधार) एवं मील के पत्थर का लक्ष्य होता है। यहाँ प्रमापीकरण से तात्पर्य प्रत्येक व्यावसायिक क्रिया हेतु मानक निर्धारण की प्रक्रिया से है। अतः प्रमापीकरण कच्चा माल, प्रक्रिया, उत्पाद, समय, मशीनरी, कार्यपद्धति अथवा कार्य-शर्तों का भी हो सकता है। यह मानक वे मानदंड होते हैं, जिनका पालन उत्पादन के दौरान किया जाता है। सरलीकरण का उद्देश्य बेकार किस्मों, आकार व आयामों की समाप्ति होता है जबकि प्रमापीकरण का अर्थ वर्तमान किस्मों के स्थान पर नई किस्मों को तैयार करना होता है। सरलीकरण के अन्तर्गत उत्पादन की व्यर्थ अनेकताओं को समाप्त किया जाता है, जिससे श्रम, मशीन तथा उपकरणों की लागत की बचत होती है। इसके अंतर्गत उपकरणों का संपूर्ण उपयोग, मालरहित या कम रखना तथा आवर्त में बढ़ोतरी शामिल हैं।

बहुत-सी बड़ी कम्पनियों; जैसे–माइक्रोसॉफ्ट, टोयोटा एवं नोकिया आदि ने प्रमापीकरण व सरलीकरण का क्रियान्वयन सफलतापूर्वक किया है। इन कम्पनियों की अपने-अपने बाजार में भारी हिस्सेदारी से यह स्पष्ट होता है।

प्रश्न 9. प्रबन्ध की अवधारणा की व्याख्या कीजिए।

उत्तर- बहुत-से लेखकों द्वारा प्रबंध की परिभाषा दी गई है। प्रबंध' एक बहुत ही प्रचलित शब्द है, जिसे सभी प्रकार की क्रियाओं हेतु व्यापक स्तर पर प्रयुक्त किया गया है। वैसे यह शब्द किसी भी उद्यम की विभिन्न क्रियाओं हेतु प्रमुख रूप से प्रयुक्त हुआ है। ऊपर दिए गए उदाहरण द्वारा स्पष्ट है कि प्रबंध वह क्रिया है, जो प्रत्येक उस संगठन में आवश्यक है जिसमें लोग समूह के रूप में कार्य कर रहे हैं। प्रबंध लोगों के प्रयासों तथा समान उद्देश्यों को प्राप्त करने में सही दिशा प्रदान करता है। इस प्रकार प्रबंध यह देखता है कि कार्य पूर्ण हों तथा लक्ष्य प्राप्त किए जाएँ (अर्थात् प्रभावपूर्णता) कम-से-कम साधन एवं न्यूनतम लागत (अर्थात् कार्यक्षमता) पर हो।

अतः प्रबंध को इस प्रकार परिभाषित कर सकते हैं कि यह उद्देश्यों को प्रभावी ढंग से एवं दक्षता से प्राप्त 'करने के उद्देश्य से कार्यों को पूर्ण कराने की प्रक्रिया है। हमें इस परिभाषा के सही विश्लेषण की आवश्यकता है। प्राय: कुछ शब्द ऐसे भी हैं जिनका विस्तारपूर्वक वर्णन करना अत्यावश्यक है। ये शब्द हैं-(i) प्रक्रिया (ii) प्रभावी ढंग से तथा (ii) पूर्ण क्षमता से।

उपरोक्त परिभाषा में प्रयुक्त प्रक्रिया' शब्द से आशय है प्राथमिक कार्य या क्रियाएँ जिन्हें प्रबंध कार्यों को पूर्ण कराने हेतु करता है। ये कार्य हैं- संगठन, नियोजन, नियुक्तीकरण, निर्देशन व नियंत्रण।

प्रभावी या कार्य को प्रभावी ढंग से करने का अभिप्राय दिए गए कार्य को सम्पन्न करने से है। प्रभावी प्रबंध सही कार्य को करने, क्रियाओं को पूर्ण करने तथा उद्देश्यों को प्राप्त करने से सम्बन्धित है। दूसरे शब्दों में, इसका कार्य अंतिम परिणाम प्राप्त करना है लेकिन कार्य को केवल सम्पन्न करना ही पर्याप्त नहीं है, अपितु इसका एक और पहलू भी है और वह कार्य को कुशलतापूर्वक करना है। कुशलता का अर्थ-कार्य को उचित ढंग से न्यूनतम लागत पर करना है। इसमें एक प्रकार से लागत-लाभ विश्लेषण तथा आगत व निर्गत के मध्य सम्बन्ध होता है। यदि कम साधनों (अर्थात आगत) का उपयोग करके अधिक लाभ (अर्थात् निर्गत) अर्जित करते हैं, तो हम कह सकते हैं कि क्षमता में वृद्धि हुई है। क्षमता में वृद्धि होना निश्चित है, यदि उसी लाभ अथवा निर्गत के लिए कम साधनों का उपयोग किया जाता है तथा कम लागत व्यय की जाती है। जो साधन किसी विशेष कार्य को करने के लिए आवश्यक धन, माल, उपकरण व मानव संसाधन हों, वे 'आगत साधन' कहलाते हैं। स्वभाविकतः प्रबंध का संबंध इन संसाधनों के कुशल प्रयोग से है, क्योंकि इनसे लागत कम होती है और अन्ततः लाभ में वृद्धि होती है।

प्रश्न 10. प्रबन्ध के उद्देश्यों को स्पष्ट कीजिए। .

उत्तर- प्रबन्ध के उद्देश्यों को अग्रलिखित तीन भागों में बाँटा जा सकता है---

1. संगठनात्मक उद्देश्य---- संगठनात्मक उददेश्यों से आशय पूरे संगठन हेतु निर्धारित किए जाने वाले उद्देश्यों से है। किसी भी संगठन का मख्य उददेश्य मानव व भौतिक संसाधनों के अधिकतम सम्भव लाभ हतु उपयोग होना चाहिए। इसका अर्थ है-व्यवसाय के आर्थिक उद्देश्यों को पूर्ण करना। ये उद्देश्य है-अपने आपको जीवित रखना, लाभ अर्जित करना एवं बढ़ोतरी करना।

2. सामाजिक उद्देश्य---- संगठन चाहे व्यावसायिक हो अथवा गैर-व्यावसायिक, समाज का अंग होने के कारण उसे कुछ सामाजिक दायित्वों को पूर्ण करना होता है। इसका तात्पर्य है-समाज के अभिन्न अगों के लिए अनुकूल आर्थिक मूल्यों की रचना करना। प्रबन्ध के इस उद्देश्य में निम्नलिखित को सम्मिलित किया जाता है---

(i) रोजगार के अवसर प्रदान करना,

(ii) उत्पादन से सम्बन्धित भिन्न पर्यावरण पद्धति अपनाना,

(iii) जीवन-स्तर में सुधार के लिए योगदान देना,

(iv) कर्मचारियों के लिए विद्यालय एवं शिशुगृह जैसी सुविधाएँ प्रदान करना,

(v) अच्छी क्वालिटी की वस्तुओं को उचित मूल्य पर उपलब्ध कराना आदि।

3. व्यक्तिगत उद्देश्य--- प्रबन्ध के व्यक्तिगत उद्देश्यों से आशय कर्मचारियों के सन्दर्भ में निश्चित किए जाने वाले उद्देश्यों से होता है। इस प्रकार के उद्देश्य को निश्चित करते समय प्रबन्ध की व्यक्तिगत और संगठनात्मक दोनों को ही साथ में लेकर चलना चाहिए ताकि दोनों में कोई टकराव न हो पाए। इस प्रकार के उददेश्यों में निम्नलिखित को सम्मिलित करते हैं---

(i) श्रमिकों को उचित पारिश्रमिक देना,

(ii) कर्मचारियों को स्वच्छ व उचित वातावरण उपलब्ध कराना, एवं

(iii) उनको लाभ में से हिस्सा प्रदान करना आदि।

प्रश्न 11. 'प्रबन्ध एक कला है। क्या आप इस कथन से सहमत हैं? अपने उत्तर के समर्थन में कोई दो कारण बताइए।

उत्तर- प्रबंध एक कला है, क्योंकि यह निम्नलिखित विशेषताओं को पूर्ण करती है–

(i) एक सफल प्रबंधक, प्रबंध कला उपयोग उद्यम के दिन-प्रतिदिन के प्रबंध में करता है जोकि अनुभव,

अध्ययन व अवलोकन पर आधारित होती है। प्रबंध के बहुत-से क्षेत्र (विपणन, वित्त एवं मानव संसाधन) हैं, जिनसे संबंधित पर्याप्त साहित्य उपलब्ध है और जिनमें प्रबंधक को विशिष्टता प्राप्त करनी होती है, प्रायः इनके सिद्धान्त पहले से ही विद्यमान हैं।

(ii) प्रबंध के बहुत-से सिद्धान्त भी हैं, जिनका कई प्रबंध विचारकों ने प्रतिपादन किया है तथा जो कुछ सर्वव्यापी सिद्धान्तों को अधिकृत करते हैं। कोई भी प्रबंधक इन वैज्ञानिक पद्धतियों तथा ज्ञान को दी गई परिस्थिति को अथवा समस्यानुसार अपने विशिष्ट तरीके से प्रयोग करता है। एक अच्छा प्रबंधक वह कहलाता है जो रचनात्मकता, व्यवहार, पहल क्षमता, कल्पना-शक्ति आदि को मिलाकर कार्य करता है।

(iii) एक प्रबंध इस प्राप्त ज्ञान का परिस्थितिजन्य वास्तविकता के परिदृश्य में दक्षतानुसार एवं व्यक्तिनुसार उपयोग करता है। वह संगठन की गतिविधियों में लीन रहता है, कमजोर परिस्थितियों का अध्ययन करता है तथा अपने सिद्धांतों का निर्माण करता है जिन्हें दी गई परिस्थितियों के अनसार उपयोग में लाया जा सकता है। वहीं, इससे प्रबंध की विभिन्न शैलियों का जन्म होता है। सर्वश्रेष्ठ प्रबंधक वही होते हैं जो समर्पित होते हैं, जिन्हें उच्च प्रशिक्षण तथा शिक्षा प्राप्त है, उनमें उत्कृष्ट आकांक्षा, स्वयं प्रोत्साहन सृजनात्मकता एवं कल्पनाशीलता जैसे व्यक्तिगत गुण हैं तथा वह स्वयं तथा संगठन के विकास की इच्छा रखता है।

प्रश्न 12. "समन्वय प्रबन्ध का सार है।" क्या आप सहमत हैं? कारण बताइए। [NCERT]

उत्तर- किसी संगठन की प्रबंधन प्रक्रिया में एक प्रबंधक को एक-दूसरे से सम्बद्ध पाँच कार्य करने पड़ते हैं। प्रायः संगठन एक ऐसी पद्धति है, जो एक-दूसरे से सम्बद्ध व आधारित उप-पद्धतियों से बनी है। प्रबंधक का कार्य इन विभिन्न समूहों को समान उददेश्य प्राप्त करने के लिए एक-दूसरे से जोड़ना होता है। अतः विभिन्न विभागों की गतिविधियों की एकात्मकता की प्रक्रिया को 'समन्वय' कहा जाता है।

समन्वय वह शक्ति है, जो प्रबंध के अन्य सभी कार्यों को एक-दूसरे से बाँधती है। समन्वय एक ऐसा सूत्र है जो संगठन के कार्य में लगातार निरंतरता बनाए रखने के लिए क्रय, उत्पादन, विक्रय तथा वित्त जैसे सभी कार्यों को बाँधे रखता है। समन्वय को अक्सर प्रबंध का एक भिन्न कार्य माना जाता है, परंतु यह प्रबंध का सार है क्योंकि यह संगठन के सामूहिक लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए किए गए व्यक्तिगत प्रयासों में एकता लाता है। अत: प्रबंधकीय कार्य एक ऐसी गतिविधि है जो स्वयं बेजोड़ समन्वय में सहायता करती है। समन्वय किसी संगठन के सभी कार्यों में अन्तर्निहित तथा लक्षित है। नियोजन द्वारा ही संगठन की क्रियाओं के समन्वय की प्रक्रिया शुरू होती है तथा उच्च प्रबंध परे संगठन हेतु योजना का निर्माण करता है। इन्हीं योजनाओं के अनुसार, संगठन के ढाँचों का विकास

तथा कर्मचारियों को नियुक्त किया जाता है। वहीं निर्देशन की आवश्यकता योजनाओं का क्रियान्वयन योजना के अनुसार करने के लिए होती है। इसके अतिरिक्त, यदि वास्तविक क्रियाओं तथा उनकी उपलब्धियों में किसी प्रकार की कोई भिन्नता है तो इसका समाधान नियंत्रण के दौरान किया जाता है। समन्वय के माध्यम से प्रबंध, उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए उठाए गए कदमों में एकता को सुनिश्चित करने हेतु सामूहिक व व्यक्तिगत प्रयासों की सही व्यवस्था करता है तथा समन्वय, संगठन की विभिन्न इकाइयों के अलग-अलग कार्यों तथा प्रयासों में एकता स्थापित करता है। प्रायः समन्वय प्रयासों की आवश्यकता राशि, मात्रा, क्रमबद्धता एवं समय उपलब्ध कराकर नियोजित उद्देश्यों को प्राप्त करने को सुनिश्चित करता है।

प्रश्न 13. एक पेशे के रूप में प्रबंधन की मूल विशेषताएँ बताइए। [NCERT)

अथवा

एक पेशे के रूप में प्रबंध की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

अथवा

"पेशे के सिद्धांतों को प्रबंध, पूर्णरूप से पूरा नहीं करता है। इस कथन को स्पष्ट करते हुए प्रबन्ध की कुछ अन्य विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

उत्तर- पेशे की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं---

1. भली-भाँति परिभाषित ज्ञान का संमूह---- प्राय: सभी पेशे भली-भाँति परिभाषित ज्ञान के समूह पर आधारित होते हैं जिसे शिक्षा के माध्यम से ही अर्जित किया जा सकता है।

2. अवरोधित प्रवेश-पेशे में प्रवेश, परीक्षा या शैक्षणिक योग्यता द्वारा ही सीमित होता है। उदाहरण के लिए-यदि भारत में किसी को चार्टर्ड अकाउण्टेण्ट (CA)बनना है, तो उसे भारतीय चार्टर्ड अकाउण्टेण्ट संस्थान द्वारा आयोजित प्रवेश परीक्षा को उत्तीर्ण करना होगा।

3. पेशागत परिषद्-प्रायः सभी पेशे किसी-न-किसी परिषद् अथवा सभा से सम्बद्ध होते हैं, जो इनमें प्रवेश का नियमन करते हैं, आधार-संहिता तैयार करते हैं, कार्य करने हेतु प्रमाण-पत्र जारी करते हैं तथा उसको लागू भी करते हैं। भारत में वकालत करने के लिए अधिवक्ताओं को बार काउंसिल का सदस्य बनना जरूरी होता है, जो उनके कार्यों का नियमन व नियंत्रण करती हैं।

4. नैतिक आचार-संहिता-सभी पेशे आचार-संहिता के सूत्र से आपस में बँधे हुए हैं, जो उनके सदस्यों के व्यवहार को सही दिशा प्रदान करते हैं। उदाहरण के लिए जब डॉक्टर अपने पेशे में प्रवेश करते हैं, तो वह अपने कार्य के लिए नैतिकता की शपथ ग्रहण करते हैं।

5. सेवा का उद्देश्य-निष्ठा एवं प्रतिबद्धता पेशे का मूल उद्देश्य है तथा अपने ग्राहकों के हितों की साधना है। एक अधिवक्ता यही सुनिश्चित करता है कि उसके मुवक्किल को न्याय मिले।

पेशे के सिद्धांतों को प्रबंध पूर्ण रूप से पूरा नहीं करता है। इसमें कुछ अन्य विशेषताएँ होती हैं, जिनका वर्णन निम्नलिखित है---

1. सम्पूर्ण विश्व में प्रबंध विशेष तौर पर एक संकाय के रूप में विकसित हुआ है। प्रबंध ज्ञान के व्यवस्थित समूह पर आधारित है, जिसके भली-भाँति परिभाषित सिद्धांत हैं जो व्यवसाय की भिन्न-भिन्न स्थितियों पर आधारित हैं। इसका ज्ञान विभिन्न पेशेवर संस्थानों तथा महाविद्यालयों में पुस्तकों व पत्रिकाओं के माध्यम से अर्जित किया जा सकता है। विभिन्न संस्थानों में प्रबंध को विषय के रूप में पढ़ाया जाता है, जिनमें से कुछ संस्थानों को केवल प्रबंध की शिक्षा प्रदान करने के लिए ही स्थापित किया गया है; जैसे-भारतीय प्रबंध संस्थान (IIM)। इन संस्थानों में प्रवेश परीक्षा के माध्यम से ही होता है।

2. किसी भी व्यावसायिक इकाई में किसी भी व्यक्ति को प्रबंधक के पद पर मनोनीत या नियुक्त किया जा सकता है। चिकित्सा अथवा कानून के पेशे में डॉक्टर अथवा अधिवक्ता के पास मान्य डिग्री का होना आवश्यक है, परंतु विश्व में प्रबंधक के लिए कोई डिग्री कानूनी रूप से अनिवार्य नहीं है लेकिन यदि किसी व्यक्ति को इस पेशे का ज्ञान या प्रशिक्षण प्राप्त हो तो यह उचित योग्यता मानी जाती है। वहीं जिन लोगों के पास प्रतिष्ठित संस्थानों की डिग्री या डिप्लोमा हैं, उनकी माँग अत्यधिक है। अत: इस प्रकार से दूसरी आवश्यकता की पूर्ति पूर्ण रूप से नहीं होती है।

3. भारत में प्रबंध में लगे प्रबंधकों के बहुत से संगठन हैं; जैसे-ऑल इण्डिया मैनेजमेण्ट एसोसिएशन (AIMA), जिसने अपने सभी सदस्यों के कार्यों के नियमन हेतु आचार-संहिता बनाई है परंतु इस प्रकार के संगठनों का सदस्य बनने के लिए प्रबंधकों के ऊपर किसी भी प्रकार का दबाव नहीं है और न ही इनकी कोई वैध मान्यता है।

4. प्रबंध का मुख्य उद्देश्य किसी संगठन को अपने लक्ष्यों की प्राप्ति में सहायता प्रदान करना है। यह लक्ष्य अत्यधिक लाभ कमाना भी हो सकता है और अस्पताल में सेवा भी। वैसे प्रबंध का अत्यधिक लाभ कमाने का उद्देश्य सही नहीं है तथा यह तेजी से परिवर्तित हो रहा है इसलिए यदि किसी संगठन के पास अच्छे व कुशल प्रबंधकों की टीम है (जो प्रभावी व क्षमतावान है), तो वह स्वयं वही उचित मूल्य पर गुणवत्तापूर्ण उत्पाद उपलब्ध कराकर समाज सेवा कर रहा है।

प्रश्न 14. प्रबन्ध की सीमाओं का उल्लेख कीजिए।

उत्तर- प्रबन्ध की निम्नलिखित सीमाएँ हैं---

1. प्रबन्ध-सिद्धान्त परिवर्तनशील हैं–-- सामाजिक गतिविधियों में परिवर्तन हो जाने के कारण प्रबन्ध सिद्धान्तों में भी परिवर्तन की आवश्यकता होती है।

2. परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तन आवश्यक है---- प्रबन्धशास्त्र का एक सिद्धान्त किसी एक देश के लिए लाभदायक परंतु दूसरे देश के लिए हानिकारक सिद्ध हो सकता है, अत: प्रबंध-नीतियों और यन्त्र-विधियों को देश, काल और परिस्थितियों के अनुसार समायोजित करना पड़ता है।

3. मानवीय आचरण के सम्बन्ध के कारण विकास में कठिनाई---- प्रबन्ध का कर्मचारी, ग्राहक, श्रमिक, व्यापार के स्वामी तथा सरकारी अधिकारी आदि से प्रत्यक्ष सम्बन्ध होता है। इनका व्यवहार किसी ठोस नियम पर आधारित नहीं होता, जिस कारण प्रबन्ध के सिद्धान्त व्यर्थ सिद्ध हो जाते हैं।

4. नौकरशाही को प्रोत्साहन----- प्रबन्ध अन्य व्यक्तियों से कार्य कराने की कला होती है, इसलिए इससे - ऊँच-नीच का भेदभाव, लालफीताशाही तथा नौकरशाही जैसी अनेक दूषित मनोवृत्तियाँ उत्पन्न हो जाती हैं।

5. निजी हित एवं विशिष्ट प्रतिफल की आशंका---- प्रबन्ध निजी हित एवं विशिष्ट प्रतिफल प्राप्त करने की भावना से प्रेरित होता है, अत: प्रबन्धक आज सर्वप्रथम अपने हित तथा लाभ की बात सोचने वे लाभ प्राप्त करने के लिए विशेषज्ञों की नियुक्ति करते हैं। इसके परिणामस्वरूप वे सर्वाधिक शोषण करने में सफल हो जाते हैं। . 6. सुद्रढ़ एवं स्थिर मापदण्डों का अभाव---- प्रबन्धकीय तकनीकों और उनके प्रभावों का मल्यांकन करने हेतु सुदृढ़ व स्थिर मापदण्डों का अभाव होता है।

प्रश्न 15. रित एक बड़े कॉर्पोरेट हाउस के उत्तरी प्रभाग की प्रबंधक है। वह संगठन में किस स्तर पर काम करती है? उसके बुनियादी कार्य क्या हैं? [NCERT]

उतर–रितु संगठन में मध्यस्तरीय प्रबन्ध पर कार्य करती हैं। इसका मूल कार्य उच्चस्तरीय प्रबन्धकों द्वारा तैयार योजनाओं को पूर्ण करना होता है। इसके लिए----

(i) उच्च प्रबन्धकों द्वारा बनाई गई योजना की व्याख्या करनी होती है।

(ii) रितु कम्पनी के उद्देश्यों के सन्दर्भ में सभी विभागों का ढाँचा तैयार करती है।

(iii) अपने विभाग के लिए पर्याप्त संख्या में कर्मचारियों को सुनिश्चित करती है तथा विभाग की जिम्मेदारी को पूर्ण करने के लिए वांछित कर्मचारियों की नियुक्ति करती है।

(iv) अपने अधीनस्थों को यह बताना होता है कि उन्हें क्या और कैसे करना है। इसके लिए वह उन्हें आवश्यक संसाधन उपलब्ध करती है।

(v) रितु अपने अधीनस्थों को विभिन्न तरीकों से अभिप्रेरित करती है जिससे कि वे कम्पनी के उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु पूरी क्षमता से कार्य कर सकें।

(vi) इच्छित उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए अन्य विभागों से सहयोग व समन्वय स्थापित करना होता है।

(vii) इन सभी बिन्दुओं के साथ-साथ वह प्रथम पंक्ति के प्रबन्धकों के कार्यों के लिए भी उत्तरदायी होती है।

प्रश्न 16. प्रबन्ध के स्तरों की व्याख्या कीजिए।

उत्तर- प्रबंध के स्तर--- प्रबंध एक सार्वभौमिक शब्द है, जिसे किसी उद्यम तथा सम्बंधों के समूह में परस्पर एक-दूसरे से जुड़े लोगों द्वारा कुछ कार्यों को करने हेतु प्रयोग में लाया जाता है। संबंधों की इस श्रृंखला में प्रत्येक व्यक्ति को किसी-न-किसी कार्य-विशेष को पूर्ण करने का उत्तरदायित्व होता है। उसे इस उत्तरदायित्व को पूर्ण करने के लिए कुछ अधिकार दिए जाते हैं; जैसे-निर्णय लेने का अधिकार। उत्तरदायित्व तथा अधिकार का यह संबंध व्यक्तियों को अधीनस्थ व अधिकारी के रूप में एक-दूसरे से बाँधता है, जिससे संगठन में विभिन्न स्तरों का निर्माण होता है। प्राय: किसी संगठन की अधिकार-श्रृंखला में तीन प्रकार के स्तर होते हैं

1. उच्चस्तरीय प्रबंध--- यह संगठन के उच्च अथवा वरिष्ठ अधिकारी होते हैं जिन्हें चेयरमैन, मुख्य कार्यकारी अधिकारी, प्रधान या उप-प्रधान आदि कई नामों से जाना जाता है। विभिन्न कार्यात्मक स्तर के प्रबंधकों की टीम ही उच्च प्रबंध होती है, जिनका मुख्य कार्य संगठन के कुल उद्देश्यों को ध्यान में रखकर विभिन्न तत्त्वों में एकता तथा विभिन्न विभागों में सामंजस्यता स्थापित करना होता है। संगठन के कल्याण व निरंतरता के लिए उच्च स्तर के यही प्रबंधक उत्तरदायी होते हैं। ये फर्म के जीवन के लिए व्यवसाय के पर्यावरण तथा उसके प्रभाव का विश्लेषण करते हैं। ये अपनी उपलब्धि से नए संगठन के लक्ष्य तथा व्यूह-रचना को तैयार करते हैं तथा व्यवसाय के सभी कार्यों एवं उनके समाज पर प्रभाव के लिए उत्तरदायी होते हैं। प्राय: उच्च प्रबंध का कार्य जटिल तथा तनावपूर्ण होता है। यदि इसमें लम्बा समय लगता है, तो संगठन के प्रति पूर्ण प्रतिबद्धता की जरूरत होती है।

2. मध्यस्तरीय प्रबंध--- ये उच्च प्रबंधकों तथा निचले स्तर के मध्य की कड़ी होते हैं तथा उच्च प्रबंधकों के अधीनस्थ व प्रथम रेखीय प्रबंधकों के प्रधान होते हैं, जिन्हें सामान्य तौर पर विभाग प्रमुख' कहा जाता है। उच्च प्रबंध द्वारा विकसित नियंत्रण योजनाएँ तथा व्यूह-रचना के क्रियान्वयन हेतु मध्य स्तरीय प्रबंधक उत्तरदायी होते हैं। साथ ही ये प्रथम रेखीय प्रबंधकों के सभी कार्यों के लिए भी उत्तरदायी होते हैं। इनका प्रमुख कार्य उच्चस्तरीय प्रबंधकों द्वारा तैयार योजनाओं को पूर्ण करना

होता है। वे इसके लिए (i) उच्च प्रबंधकों द्वारा बनाई गई योजनाओं की व्याख्या करते हैं; (ii) अपने विभाग हेतु पर्याप्त संख्या में कर्मचारियों को सुनिश्चित करते हैं; (ii) उन्हें आवश्यक कार्य व दायित्व सौंपते हैं; (iv) इच्छित लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए अन्य विभागों से सहयोग करते हैं। इसके साथ ही वे प्रथम पंक्ति के प्रबंधकों के कार्यों के लिए भी उत्तरदायी होते हैं।

3. पर्यवेक्षीय अथवा प्रचालन प्रबंध---- फोरमैन तथा पर्यवेक्षक संगठन की अधिकार पंक्ति में निम्न ' स्तर पर आते हैं। पर्यवेक्षक कार्यबल के कार्यों का प्रत्यक्ष रूप से अवलोकन करते हैं। वहीं पर्यवेक्षक के अधिकार तथा कर्त्तव्य उच्च प्रबंधकों द्वारा बनाई गई योजनाओं के द्वारा निर्धारित होते हैं। प्रायः पर्यवेक्षण, प्रबंधकों की भूमिका संगठन में बहुत महत्त्वपूर्ण होती है, क्योंकि यह सीधे तौर पर वास्तविक कार्यबल से संवाद करते हैं और मध्य स्तरीय प्रबंधकों के दिशा-निर्देशों को कर्मचारियों तक पहुँचाने का कार्य करते हैं। इन्हीं के प्रयत्नों द्वारा किसी उत्पाद की गुणवत्ता तथा माल की हानि को न्यूनतम रखकर सुरक्षा का स्तर बनाए रखा जाता है।

कर्मचारियों के परिश्रम, अनुशासन तथा स्वामिभक्ति पर ही कारीगरी की गुणवत्ता तथा उत्पादन की मात्रा निर्भर करती है।

प्रश्न 17. "एक सफल उद्यम को अपने लक्ष्यों को प्रभावी ढंग से कुशलतापूर्वक हासिल करना होता है।" स्पष्ट करें।

उत्तर- एक सफल उद्यम को अपने लक्ष्यों को प्रभावी ढंग से और कुशलतापूर्वक प्राप्त करने के लिए उसका प्रभाव और क्षमतावान होना महत्त्वपूर्ण है। प्रभावपूर्णता और कौशल दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं लेकिन इन दोनों में परस्पर सन्तुलन होना आवश्यक है तथा कभी-कभी प्रबन्ध को कुशलता से समझौता करना होता है। यदि वह कुशल नहीं होगा तो वह व्यापार में सफलता प्राप्त नहीं कर सकेगा। उदाहरण के लिए, माना कि एक उद्यमी कम संसाधनों से माल का अधिक उत्पादन करना चाहता है तो इसका परिणाम यह होगा कि या तो निर्धारित मात्रा में उत्पादन नहीं हो सकेगा और यदि हो भी गया तो वह निम्न श्रेणी का होगा, इसके फलस्वरूप बाजार में वस्तु की माँग कम हो जाएगी और उद्यम में लाभ के स्थान पर हानि होन लगेगी। अत: न्यूनतम लागत पर कशलतापर्वक लक्ष्यों को प्राप्त करना (प्रभावोत्पादकता) प्रबन्ध क लिए अत्यधिक महत्त्वपूर्ण होता है। इसके लिए प्रमुख रूप से प्रभावशीलता एवं कुशलता में सन्तुलन बनाए रखना होता है। सामान्यतः उच्च कार्यकुशलता के साथ उच्च प्रभावशीलता का होना आवश्यक होता है जो कि समस्त प्रबन्धकों का लक्ष्य होता है। लेकिन बिना प्रभावशीलता के उच्च कार्यकुशलता परं अनावश्यक रूप से जोर देना अवांछनीय होता है। कमजोर प्रबन्धन प्रभावशीलता एवं कार्यकुशलता दोनों की कमी के कारण होता है।

प्रश्न 18. 'प्रबंधन सतत् पारस्परिक कार्यों की एक श्रृंखला है टिप्पणी कीजिए। [NCERT)

उत्तर- यह कथन पूर्णतः सत्य है क्योंकि एक प्रबन्धक निर्धारित क्रम में निम्नलिखित कार्य सम्पन्न करता है--

1. नियोजन---- इसका आशय कुछ करने से पहले सोचना है, अर्थात् नियोजन के अन्तर्गत यह निर्धारित किया जाता है कि क्या करना है, कैसे करना है, किस प्रकार करना है, कब करना है तथा किस व्यक्ति द्वारा वह कार्य किया जाना है आदि। इसका अर्थ है कि लक्ष्यों को पहले से ही निर्धारित करना एवं लक्ष्य की प्राप्ति हेतु दक्षता एवं प्रभावी ढंग से कार्य करते हुए मार्ग निश्चित करना।

2. संगठन---- संगठन योजनाओं के क्रियान्वयन हेतु कार्य सौंपने, कार्यों को समूहों में बाँटने, अधिकार निश्चित करने तथा संसाधनों को आबंटित करने का कार्य प्रबन्ध करता है। यह निर्णय लेता है कि किस कार्य को कौन करेगा, कहाँ करेगा तथा कब किया जाएगा।

3. नियुक्तीकरण--- प्रबन्ध का एक महत्त्वपूर्ण लक्ष्य संगठन के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए उचित योग्यता वाले व्यक्तियों को सही स्थान एवं उचित समयानुसार उपलब्ध करने को सुनिश्चित करना है। इसके अन्तर्गत कर्मचारियों की भर्ती, चयन, नियुक्ति एवं प्रशिक्षण आदि सम्मिलित हैं।

4. निर्देशन---- निर्देशन का कार्य कर्मचारियों को नेतृत्व प्रदान करना, प्रभावित करना एवं अभिप्रेरित करना है जिससे कि वे दिए गए कार्य को पूरा कर सकें। इसके लिए एक ऐसा माहौल तैयार करने की आवश्यकता है जो कर्मचारियों को सर्वोत्तम ढंग से कार्य करने के लिए प्ररित करे।

5. नियन्त्रण--- नियन्त्रण के अन्तर्गत प्रबन्धक संगठन के उद्देश्यों अथवा लक्ष्यों को प्राप्त करने हेतु संगठन के कार्य के निष्पादन का निर्देशन करता है। नियन्त्रण कार्य में निष्पादन के विभिन्न स्तर निर्धारित किए जाते हैं। वर्तमान निष्पादन को मापते हैं। उनका पूर्वनिर्धारित स्तरों से मिलान करते हैं तथा विचलन की स्थिति में उनको दूर करने के लिए सुधारात्मक कार्यवाही करते हैं जिससे कि भविष्य में गलतियों की पुनरावृत्ति से बचा जा सके।

प्रबन्ध के विभिन्न कार्यों पर साधारणतया उपर्युक्त क्रमों में ही चर्चा की जाती है। प्रबन्धक इन सभी कार्यों को एक के बाद एक क्रम में करता है। इस प्रकार प्रबन्धक के ये कार्य एक-दूसरे से इस प्रकार जुड़े रहते हैं कि यह निश्चित करना कठिन होता है कि कौन-सा कार्य कहाँ से आरम्भ हुआ तथा कहाँ पर समाप्त हुआ।

प्रश्न 19. योजना की परिभाषा में मुख्य पहलू क्या हैं? [NCERT]

उत्तर- नियोजन से तात्पर्य पहले से यह निश्चित करना है कि भविष्य में क्या करना है और कैसे करना है? नियोजन प्रबंध के मलभूत कार्यों में से एक है। प्रबंधक के मन में कुछ भी करने से पूर्व यह विचार आता है कि अमुक कार्य को कैसे किया जाए? अत: नियोजन, सृजनात्मकता व नवप्रवर्तन से अति निकटता के साथ जुड़ा हुआ है परन्तु प्रबंधक को सबसे पहले उद्देश्यों को निर्धारित करना पड़ता है, उसके पश्चात् ही वह यह जान सकता है कि उसे क्या करना है। इस प्रकार नियोजन हम कहाँ खड़े हैं तथा हमें कहाँ पहुँचना है? के मध्य सेतु का कार्य करता है।

नियोजन क्या है? जो प्रबंधक प्रत्येक स्तर पर करते हैं। इसमें निर्णय लेने की जरूरत होती है। निस्संदेह नियोजन की आवश्यकता उस समय होती है, जब किसी एक क्रिया को पूर्ण करने के लिए अनेक विकल्प विद्यमान हों।

अत: नियोजन का अर्थ उद्देश्यों का निर्धारण और इन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए समुचित कार्यविधि, सभी प्रबंधकीय निर्णयों तथा कार्यवाहियों को विकसित करने से है। नियोजन द्वारा ही सभी प्रबंधकीय निर्णयों व कार्यवाहियों को दिशा-उद्देश्य प्रदान किया जाता है। अत: नियोजन ही पूर्व-निर्धारित उददेश्यों की प्राप्ति के लिए विवेकपूर्ण मार्ग सुलभ कराते हैं। सभी सदस्यों को संस्था के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए कार्य करने की आवश्यकता होती है यही उददेश्य हमारे लक्ष्य होते हैं, जिनको प्राप्त करने की आकांक्षा होनी चाहिए और उसी के अनुसार वास्तविक निष्पादन का मापदण्ड होता है। अत: नियोजन से तात्पर्य उद्देश्यों व लक्ष्यों का निर्धारण तथा उनकी प्राप्ति के लिए एक कार्यविधि का प्रतिनिधित्व करने से है। नियोजन, क्या करना है तथा कैसे करना है, दोनो से संबंधित है। जिस योजना को विकसित किया जाता है, उसे एक निश्चित समयावधि दी जानी चाहिए क्योंकि समयावधि एक सीमित संसाधन है। अत: समय को बुद्धिमत्तापूर्वक उपयोग में लाया जाना चाहिए। यदि समय को ध्यान में न रखा जाए, तो वातावरण की अवस्थाओं में बदलाव के कारण सभी व्यावसायिक योजनाएँ निरर्थक हो जाती हैं। अत: कोई भी व्यवसाय योजनाओं को अंतरहित सहन नहीं करता और उन योजनाओं पर कार्य किए बगैर भी नहीं रह सकता।

प्रश्न 20. योजना रचनात्मकता को कम कर देती है। टिप्पणी करें। [NCERT]

उत्तर- नियोजन एक ऐसी क्रिया है, जिसकी रचना उच्चस्तरीय प्रबंधन द्वारा की जाती है तथा शेष संगठन इन योजनाओं का क्रियान्वयन करते हैं। अनुक्रमानुसार, मध्य स्तर का प्रबंधन व अन्य निर्णायककर्ता न तो इनमें किसी प्रकार का विचलन करने के लिए अधिकृत होते हैं और न ही आपकी इच्छा के अनुसार कार्य करने की अनुमति प्राप्त होती है। इस प्रकार बहुत-सी पहल क्षमता तथा सृजनात्मकता (जो उनके अंदर छुपी हुई है) दबकर रह जाती है। बहुत-सी बार तो कर्मचारी योजनाओं

का निरूपण ही नहीं करते, अर्थात् वे केवल आज्ञा-पालन करते हैं। अत: नियोजन की सृजनात्मकता कम हो जाती है, क्योंकि कार्यकर्ता उसी प्रकार सोचना शुरू कर देते हैं जैसा कि आमजन समझते हैं। किसी भी प्रकार का नया अथवा नवप्रवर्तन नहीं होता है।

प्रश्न 21. नियोजन क्यों आवश्यक होता है?

उत्तर- नियोजन हमें यह बताता है कि हमें कहाँ पर जाना है, यह निर्देशन भी देता है तथा पूर्वानुमान द्वारा असम्भावित (अनिश्चिंत) जोखिमों को कम भी करता है। नियोजन की सामान्यतया निम्नलिखित कारणों से आवश्यकता होती है---

1. यह निर्देशन की व्यवस्था करता है।

2. यह अनिश्चितता के जोखिमों को कम करता है।

3. इससे अतिव्यापित तथा अपव्ययी क्रियाओं में कमी आती है।

4. यह नव-प्रवर्तन विचारों को प्रोत्साहित करता है।

5. यह निर्णय लेने को सरल भी बनाता है।

6. यह नियन्त्रण के मानकों का निर्धारण करता है।

प्रश्न 22. नियोजन का क्या अर्थ है? नियोजन के किन्हीं दो महत्त्वों की व्याख्या करें।

उत्तर- नियोजन से तात्पर्य पहले से यह निश्चित करना है कि भविष्य में क्या करना है और कैसे करना है? नियोजन प्रबंध के मूलभूत कार्यों में से एक है। प्रबंधक के मन में कुछ भी करने से पूर्व यह विचार आता है कि अमुक कार्य को कैसे किया जाए? अत: नियोजन, सृजनात्मकता व नवप्रवर्तन से अति निकटता के साथ जुड़ा हुआ है परन्तु प्रबंधक को सबसे पहले उद्देश्यों को निर्धारित करना पड़ता है, उसके पश्चात् ही वह यह जान सकता है कि उसे क्या करना है? के मध्य सेतु का कार्य करता है।

नियोजन क्या है? जो प्रबंधक प्रत्यक स्तर पर करते हैं। इसमें निर्णय लेने की जरूरत होती है। निस्संदेह नियोजन की आवश्यकता उस समय होती है, जब किसी एक क्रिया को पर्ण करने के लिए अनेक विकल्प विद्यमान हों। अत: नियोजन का अर्थ उद्देश्यों का निर्धारण और इन उददेश्यों को प्राप्त करने के लिए समुचित कार्यावाध, सभी प्रबंधकीय निर्णयों तथा कार्यवाहियों को विकसित करने से है। नियोजन द्वारा ही सभी प्रबंधकीय निर्णयों

कार्यवाहियों को दिशा-उददेश्य प्रदान किया जाता है।

अत: नियोजन ही पूर्व-निर्धारित उद्द्श्या का प्रार के लिए विवेकपूर्ण मार्ग सुलभ कराते हैं। सभी सदस्यों को संस्था के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए काय करने की आवश्यकता होती है यही उद्देश्य हमारे लक्ष्य होते हैं, जिनको प्राप्त करने की आकाक्षा हाना चाहिए और उसी के अनुसार वास्तविक निष्पादन का मापदण्ड होता है। अतः नियोजन से तात्पर्य उद्द्श्या व लक्ष्यों का निर्धारण तथा उनकी प्राप्ति के लिए एक कार्यविधि का प्रतिनिधित्व करने से है। नियोजन, क्या करना है तथा कैसे करना है, दोनो से संबंधित है। जिस योजना को विकसित किया जाता है, उसे एक निश्चित समयावधि दी जानी चाहिए क्योंकि समयावधि एक सीमित संसाधन है। अत: समय को बुद्धिमत्तापूर्वक उपयोग में लाया जाना चाहिए। यदि समय को ध्यान में न रखा जाए, तो वातावरण की अवस्थाओं में बदलाव के कारण सभी व्यावसायिक योजनाएँ निरर्थक हो जाती हैं। अत: कोई भी व्यवसाय योजनाओं को अंतरहित सहन नहीं करता और उन योजनाओं पर कार्य किए बगैर भी नहीं रह सकता।

नियोजन का महत्त्व

आपने फिल्में तथा विज्ञापन तो अवश्य ही देखे होंगे। किस तरह लोगों द्वारा कार्यकारी योजना तैयार की जाती है तथा किस प्रभावशाली ढंग से उसे परिषद् कक्ष में प्रस्तुत किया जाता है? क्या वे योजनाएँ सत्य ही कार्य करती हैं? क्या यह योजनाएँ कार्यक्षमता को बढ़ाती हैं? निश्चित तौर पर नियोजन प्रभावशाली है, क्योंकि यह बताता है कि हमें कहाँ जाना है? नियोजन निर्देशन देता है और पूर्वानुमान के माध्यम से अनिश्चित जोखिमों को कम करता है।

1. नियोजन निर्देशन की व्यवस्था करता है---- कार्य को किस प्रकार करना है? नियोजन इसका पहले ही मार्गदर्शन करके निर्देशन की व्यवस्था करता है। नियोजन लक्ष्य अथवा उद्देश्यों को स्पष्ट रूप से बताकर विश्वास दिलाता है कि वे एक मार्गदर्शक के रूप में यह बताते हैं कि किस दिशा में क्या करना है। यदि लक्ष्यों को सही से समझाया गया है, तो कर्मचारियों को यह पता चलता है कि संगठन को क्या करना है तथा उन्हें लक्ष्यों तक पहुँचने हेतु क्या करना चाहिए? विभिन्न संगठनों व विभागों के व्यक्ति कार्य में सामंजस्यता स्थापित करने में सक्षम होते हैं। यदि कोई योजना नहीं होगी, तो कर्मचारियों की कार्य करने की दिशाएँ भिन्न होंगी और संगठन अपने लक्ष्यों को सफलतापूर्वक प्राप्त करने में असक्षम होगा।

2. नियोजन अनिश्चितता की जोखिम को कम करता है--- प्राय: नियोजन एक ऐसी क्रिया है, जो प्रबंधक को भविष्य में झाँकने का सुअवसर प्रदान करता है तथा संभावित परिवर्तनों का ज्ञान कराता है। नियोजन भविष्य में किए जाने वाले क्रियाकलापों को निश्चित करके, असंभावित घटनाओं व परिवर्तनों से व्यवहार करने का मार्ग भी प्रशस्त करता है। परिवर्तनों व घटनाओं को रोकना कठिन है,

परंत वे पूर्वानुमानित होती हैं तथा उनके लिए प्रबंधकीय प्रतिक्रियाओं को विकसित किया जा सकता है।

प्रश्न 23. संगठन की प्रक्रिया में कौन-कौन से कदम हैं? [NCERT]

उत्तर- संगठन-प्रक्रिया में निम्नलिखित कदम हैं----

1. कार्य की पहचान तथा विभाजन---- संगठन प्रक्रिया का सबसे पहला कदम पूर्व निर्धारित योजनाओं की पहचान करना व कार्य का विभाजन करना है। इस सम्बन्ध में यह ध्यान रखना आवश्यक होता है कि कार्य करने में पुनरावृत्ति न हो और सभी कर्मचारियों में कार्य का भार विभाजित हो जाए।

2. विभागीकरण--- इसके अन्तर्गत जो क्रियाएँ समान प्रवृत्ति की होती हैं उनका साथ-साथ समूहीकरण कर दिया जाता है। समूहबद्ध करने की क्रिया ही विभागीकरण कहलाती है। इस प्रकार का निर्धारण विशिष्टीकरण को और भी सरल बनाता है। कुछ लक्षणों को आधार मानकर ही विभागों की रचना की जाती है जैसे उनमें से कुछ अत्यधिक प्रचलित आधार; जैसे-उत्पाद (उपकरण, प्रसाधन, वस्त्र आदि) तथा क्षेत्र (उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम आदि) हो सकते हैं।

3. कर्तव्यों का निर्धारण--- विभागों का निर्धारण हो जाने के पश्चात विभिन्न कर्मचारियों द्वारा किए जाने वाले कार्यों का निर्धारण कर दिया जाता है। प्रत्येक विभाग के सदस्यों में उनकी कुशलता, योग्यता, निपुणता, सक्षमता एवं कार्य की प्रकृति के आधार पर कार्य बाँट दिया जाता है। कार्य-विभाजन में यह भी आवश्यक है कि सर्वोत्तम कार्य करने के लिए सर्वोत्तम व्यक्ति को ही चुना जाए।

4. वृतात (रिपोटिंग) सम्बन्ध स्थापन–इसके अन्तर्गत भिन्न-भिन्न कार्य अधिकारियों की स्थिति को स्पष्ट करना तथा आदेश निर्देश और सम्प्रेषण की दृष्टि से उनके पारस्परिक सम्बन्धों को परिभाषित करना आता है। इनको Reporting Relations कहते हैं। प्रत्येक व्यक्ति को यह पता होना चाहिए कि उसे किससे निर्देश प्राप्त करने हैं और वह किसके प्रति उत्तरदायी है। इससे विभिन्न विभागों के बीच समन्वय स्थापित करने में भी सहायता मिलती है।

प्रश्न 24. अधिकार अंतरण के तत्वों पर चर्चा करें। [NCERT]

उत्तर- अधिकार अन्तरण के तत्त्व निम्नलिखित हैं--

1. अधिकार--- अधिकार से आशय एक व्यक्ति विशेष के उस अधिकार से है जिसके आधार पर उसके द्वारा अपने अधीनस्थों को नियंत्रित किया जाता है अथवा निर्णय लिया जाता है। निर्णय संसाधनों के प्रयोग करने अथवा कोई कार्य करने या न करने से भी सम्बन्धित हो सकते हैं। इसे

दूसरे व्यक्ति को सौंपा जा सकता है। इसका सम्बन्ध पद-अधिकार क्षेत्र से होता है। पद के बदलते ही इनमें परिवर्तन हो जाता है। अधिकार अन्तरण संगठन की कानून व्यवस्था और नियमों से बँधा हुआ होता है जो इसके क्षेत्र को सीमाबद्ध करते हैं। परन्तु इसके पश्चात् भी प्रबन्धकीय पदानुक्रम में हम जितना ऊपर की ओर बढ़ेंगे, अधिकारों के क्षेत्र में भी उतनी ही अधिक वृद्धि होगी।

2. उत्तरदायित्व–-- एक अधीनस्थ कर्मचारी हेतु दिए गए कार्य का अच्छी प्रकार से निष्पादन करना उसका जरूरी उत्तरदायित्व है। इसका उदय उच्च अधिकारी व अधीनस्थ के संबंधों से होता है, क्योंकि एक अधीनस्थ कर्मचारी अपने उच्चाधिकारी द्वारा बताए गए कार्यों को पूर्ण करने हेतु बाध्य होता है। उत्तरदायित्व नीचे से ऊपर की ओर प्रवाहित होता है, क्योंकि एक अधीनस्थ हमेशा अपने उच्च अधिकारी के प्रति उत्तरदायी होता है। अधिकार एवं उत्तरदायित्व के संबंध में एक महत्त्वपूर्ण बात है कि जब किसी कर्मचारी को कोई उत्तरदायित्व सौंपा जाता है, तो उस कार्य को पूर्ण करने हेत उसे आवश्यक अधिकारों को भी निश्चित रूप से प्रदान करने चाहिए। अत: एक प्रभावशाली भारार्पण हेतु यह जरूरी है कि जो उत्तरदायित्व सौंपा गया है उसी के आधार पर अधिकार भी प्रदान किए जाने चाहिए।

3. उत्तरदेयता या जवाबदेही--- जवाबदेही से आशय अंतिम परिणाम का उत्तर देने योग्य होने से है। यदि एक बार अधिकार का अंतरण हो जाए और उत्तरदायित्व को स्वीकार कर लिया जाए, तो कोई भी जवाबदेही से इन्कार नहीं किया जा सकता। इसका प्रवाह न तो ऊपर की ओर होता है और न ही इसका भारार्पण संभव है अर्थात् भारार्पण की दशा में कर्मचारी ही अपने उच्चाधिकारी के कार्य को ठीक प्रकार से पूर्ण करने हेतु जवाबदेह होता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि अधीनस्थ कर्मचारी को कार्य के सही संपादन के लिए अपने प्रबंधक को आश्वस्त करना होता है। सामान्यतः निरंतर प्रतिपुष्टि के माध्यम से कार्य को पूर्ण करने के लिए दबाव बनाया जाता है। अधीनस्थ कर्मचारी से यह आशा की जाती है कि वह अपनी कार्यवाही के परिणामों/घटनाओं या भूलों के सम्बन्ध में बताएगा। अंततः यह कह सकते हैं कि अधिकार अंतरित होता है, तो उत्तरदायित्व समझ लिया जाता है व जवाबदेही को आरोपित किया जाता है। जवाबदेही अधिकार अंतरण तथा उत्तरदायित्व से ही आती है।

प्रश्न 25. संगठन की परिभाषा दीजिए तथा इसकी विशेषताएँ भी बताहए।

उत्तर- संगठन निश्चित तौर पर मानवीय प्रयत्नों में सामंजस्य स्थापित करने, संसाधनों को जोड़ने तथा दोनों को एकत्रित करने में लागू होता है जिससे निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति में उनका उपयोग हो सके। साधारण शब्दों में, किसी सामान्य उद्देश्य व उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए विशेष अंगों का मैत्रीपूर्ण नियोजन ही संगठन कहलाता है।

संगठन की परिभाषा

"संगठन एक प्रक्रिया है जो कार्य को समझने तथा वर्गीकरण करने, अधिकार अंतरण को परिभाषित करने तथा मनुष्यों को अत्यधिक कार्य-कुशलता के साथ, लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु कार्य करने के लिए संबंध स्थापित करता है।"

-लुइस ऐलन

"संगठन एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा उपक्रम के कार्यों को परिभाषित एवं वर्गीकृत किया जाता है और उन्हें विभिन्न व्यक्तियों को सौंपकर उनके अधिकार संबंधों को निश्चित किया जाता है।"

-थ्यो हेमैन

संगठन की विशेषताएँ

संगठन की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं---

1. व्यक्तियों का समूह----- संगठन दो अथवा दो से अधिक व्यक्तियों का समूह होता है।

2. उद्देश्य--- संगठन को सामूहिक उद्देश्यों की पूर्ति हेतु बनाया जाता है। संगठन के कार्यों का निर्देशन इन उद्देश्यों के आधार पर ही होता है।

3. कार्य का विभाजन-संगठन में कार्य को कुशलतापूर्वक करने हेतु उसे छोटी-छोटी क्रियाओं या उपकार्यों में बाँटा जाता है।

4. समन्वय-संगठन के विभिन्न अंग एक-दूसरे से अलग होते हुए भी एक-दूसरे के साथ जुड़े रहते हैं, अत: उनमें मैत्रीपूर्ण सामंजस्य व समन्वय बना रहता है।

5. सहकारी प्रयास-संगठन का उद्देश्य सामूहिक उद्देश्यों को प्राप्त करना होता है, अतः संगठन के सभी सदस्यों में सहयोग का होना आवश्यक है।

6. नियम एवं नियमन-व्यक्तियों का वह समूह जो नियमबद्ध एवं नियन्त्रित रूप में कार्य करता है, संगठन कहलाता है।

प्रश्न 26. कार्यात्मक संगठन, प्रभागीय संगठन से किस प्रकार भिन्न है?

अथवा

कार्यात्मक संगठन ढाँचे व प्रभागीय संगठन ढाँचे में अन्तर स्पष्ट कीजिए।

उत्तर- कार्यात्मक संगठन एवं प्रभागीय संगठन में असमानता

क्र०सं०	अन्तर का आधार	कार्यात्मक संगठन	प्रभागीय संगठन
1.	स्थापना/रचना	इसकी स्थापना/रचना कार्यों पर आधारित होती हैं।	इनकी स्थापना/रचना उत्पादन रेखा पर आधारित तथा कार्यों द्वारा समर्थित होती है।
2.	विशिष्टीकरण	इसमें कार्य विशिष्टीकरण होता है।	इसमें उत्पाद विशिष्टीकरण होता है।
3.	उत्तरदायित्व	इसमें किसी भी विभाग पर उत्तरदायित्व का निर्धारण करना कठिन होता हैं क्योंकि प्रत्येक कार्यात्मक प्रबंधक को उच्च प्रबंध को सूचित करना होता है।	इसमें उत्तरदायित्व का निर्धारण करना सरल होता है क्योंकि स्वायत्तता/ स्वतन्त्रता अनेक कार्य पूरे करने के कारण प्रबंधकीय विकास में सहायता मिलती है।
4.	प्रबन्धकीय विकास	इसमें प्रबन्धकीय विकास सीमित होती है।	इसमें प्रबन्धकीय विकास सरल होता है।
5.	लागत	इसमें कार्यों की पुनरावृत्ति न होने से लागत कम आती है।	इसमें कार्यों की पुनरावृत्ति होने से लागत अधिक आती है।
6.	सामंजस्य	बहु-उत्पाद कंपनियों के लिए कठिन होता है।	यह सुगम होता है, क्योंकि किसी विशेष उत्पाद से संबंधित सभी कार्य एक ही विभाग में एकीकृत होते हैं।

प्रश्न 27. औपचारिक तथा अनौपचारिक संगठन में अन्तर बताइए।

उत्तर-- औपचारिक तथा अनौपचारिक संगठन में अन्तर

क्र०सं०	अन्तर का आधार	औपचारिक संगठन	अनौपचारिक संगठन
1.	अर्थ	यह अधिकार सम्बन्धों के ढाँचे के रूप में प्रबन्ध द्वारा उत्पन्न किया गया संगठन होता है।	यह सामाजिक सम्बन्धों के कारण कर्मचारियों की अन्त:क्रिया से उत्पन्न संगठन होता है।
2.	उद्‌गम	इसका उद्‌गम संगठन की नीतियों एवं नियमों के परिणामस्वरूप शुरू होता है।	इसकी उद्‌गम सामाजिक अन्त:क्रिया परिणामस्वरूप शुरू होती है।
3.	अधिकार सत्ता	इसमें अधिकार सत्ता संस्थागत होती है।	इसमें अधिकार सत्ता व्यक्ति के साथ होती है।
4.	उद्‌देश्य	ये तकनीकी उद्‌देश्यों हेतु बनाए जाते हैं।	ये सामाजिक हितों के लिए बनाए जाते हैं।
5.	व्यवहार	यह नियमों द्वारा अर्थात् पूर्व निर्धारित होता है, अर्थात् यह पहले से ही ज्ञात होता है कि कौन क्या करेगा, कैसे करेगा, कौन बॉस होगा तथा कौन अधीनस्थ होगा आदि।	व्यवहार व्यक्तिगत लगाव पर निर्भर करता है, अर्थात् यह पूर्व निर्धारित नहीं होता है।
6.	आकार	इनका आकार विशाल होता है।	इनका आकार लघु होता है।
7.	सत्ता का प्रवाह	इनमें सत्ता का प्रवाह ऊपर से नीचे की ओर होता है।	इनमें सत्ता का प्रवाह या तो समतल रूप से चलता है अथवा नीचे से ऊपर की ओर चलता है।
8.	जीवनकाल	इनका जीवनकाल, स्थायी एवं दीर्घायु होता है।	इनका जीवनकाल कम स्थायी एवं अल्पायु होता है।
9.	नेतृत्व	प्रबन्धक ही नेता होते हैं।	प्रबन्धक नेता हो भी सकते हैं और नहीं भी। उनका चुनाव ग्रुप द्वारा किया जाता है।

प्रश्न 28. संगठन के विभिन्न सिद्‌धान्तों का वर्णन कीजिए।

उत्तर- संगठन की सफलता कुछ निश्चित सिद्‌धान्तों पर आधारित होती है, अत: संगठन के कुछ प्रमुख सिद्‌धान्त निम्नलिखित हैं---

1. उद्‌देश्यों का सिद्‌धान्त---- संगठन के उद्‌देश्य स्पष्ट एवं निश्चित होने चाहिए। इन उद्‌देश्यों की प्राप्ति के लिए ही विभिन्न प्रकार की क्रियाएँ की जाती हैं।

2. समन्वय का सिद्‌धान्त---- संगठन का मुख्य उद्‌देश्य उपक्रम की विभिन्न इकाइयों, साधनों तथा व्यक्तियों की क्रियाओं के बीच समन्वय स्थापित करना होता है।

3. सन्तुलन का सिद्‌धान्त---- उददेश्यों की प्राप्ति के लिए समन्वय होना अति आवश्यक होता है। समन्वय

तभी होगा, जब सभी अधिकारियों के बीच सन्तुलित अधिकार होंगे।

4. निरन्तरता का सिद्धान्त---- संगठन को क्रियाओं को निर्धारित करते समय हमें वर्तमान आवश्यकताओं के साथ-साथ भविष्य की आवश्यकताओं का भी पूर्ण रूप से ध्यान रखना होता है।

5. अधिकार अन्तरण का सिद्धान्त--- किसी भी कर्मचारी को उत्तरदायित्व सौंपते समय उसे अधिकार सौंपना भी अति आवश्यक है। ऐसा होने पर ही वह अपना दायित्व भली प्रकार से निभा सकता है।

6. लोच का सिद्धान्त---- संगठन का लोचपूर्ण होना अत्यावश्यक है। ऐसा होने पर ही संगठन में आवश्यतानुसार परिवर्तन सम्भव होते हैं।

7. व्याख्या का सिद्धान्त---- संगठन के सभी कर्मचारियों के कर्त्तव्य, दायित्व और अधिकार स्पष्ट होने पर ही वे अधिक सुचारु रूप से और लगन से कार्य करते हैं।

8. विशिष्टीकरण का सिद्धान्त---- संगठन में सभी कर्मचारियों को उनके बीच कार्य का विवरण विशिष्टीकरण के आधार पर सौंपा जाना चाहिए तभी अधिकतम उत्पादन सम्भव होता है।

9. नियन्त्रण का सिद्धान्त--- प्रत्येक अधिकारी के अधीन इतने व्यक्ति होने चाहिए, जिससे कि वह सभी प्रकार के कार्यों को उचित रूप से नियन्त्रित कर सके।

10. अधिकारियों के सम्पर्क का सिद्धान्त--- किसी उपक्रम में संगठन में प्रबन्धकों के ऊपर से नीचे की और वरिष्ठता एवं अधीनता के क्रमों में परस्पर सम्बन्ध होना चाहिए। इसके साथ ही अधीनस्थ कर्मचारियों को अपने वरिष्ठ की सत्ता का उल्लंघन भी कभी नहीं करना चाहिए।

प्रश्न 29. औपचारिक संगठन के गुण-दोषों को समझाइए।

उत्तर- औपचारिक संगठन के गुण-दोष इस प्रकार हैं--

औपचारिक संगठन के गुण--- इसमें बहुत-से गुण होते हैं, जिनमें से कुछ महत्त्वपूर्ण गुण निम्नलिखित है---

(क) औपचारिक संगठन में उत्तरदायित्व का निर्धारण करना सरल होता है, क्योंकि आपसी सम्बन्धों को स्पष्ट रूप से समझाया हुआ होता है।

(ख) इसमें भ्रांति जैसी स्थिति नहीं होती है, क्योंकि प्रत्येक सदस्य के कर्त्तव्य एक-एक करके बताए हुए होते

हैं जिससे पुनरावृत्ति की संभावना भी नहीं होती।

(ग) इसमें आदेश-श्रृंखला के स्थापन के कारण आदेश संबंधी एकता बनी रहती है।

(घ) कार्य-संचालन की सुनिश्चितता व प्रत्येक कर्मचारी द्वारा किए जाने वाले कार्य की उन्हें भली-भाँति जानकारी होने से कार्य को प्रभावशाली ढंग से संपादित किया जाता है।

(ङ) इससे संगठन में स्थिरता आती है। कर्मचारियों के व्यवहार को भी सरलतापूर्वक ज्ञात किया जा सकता

है, क्योंकि उनके मार्गदर्शन हेतु स्पष्ट नियम होते हैं।

औपचारिक संगठन के दोष–- इसके निम्नलिखित दोष होते हैं---

(क) इसमें आदेश-श्रृंखला का पालन करना पड़ता है, जिससे कार्यविधिक देरी के कारण निर्णय लेने में अत्यधिक समय लगता है।

(ख) इसकी अवांछित पद्धतियाँ रचनात्मक योग्यता को उचित मान्यता नहीं दे पातीं, क्योंकि निर्धारित कठोर

नीतियाँ किसी भी प्रकार का बदलाव नहीं होने देतीं।

(ग) सभी मानवीय संबंधों को किसी भी संगठन में समझ पाना कठिन होता है, क्योंकि इनके द्वारा कार्य और

ढाँचे पर अधिक बल दिया जाता है, अत: औपचारिक संगठन से किसी के कार्य करने का सही चित्रण सामने नहीं आ पाता।

प्रश्न 30. अन्तरण के महत्त्व पर प्रकाश डालिए।

अथवा

प्रभावी अन्तरण के गुणों का वर्णन कीजिए।

उत्तर--- अंतरण का महत्त्व

अंतरण द्वारा अपने प्रबंधक के प्रति एक अधीनस्थ द्वारा कार्य करने का विश्वास दिलाया जाता है। यह कार्यभार को कम करता है तथा प्रबंधक को अत्यधिक महत्त्वपूर्ण कार्यों पर ध्यान केंद्रित करने हेतु अधिक समय प्रदान करता है। प्रभावी अंतरण के गुणों का वर्णन निम्नलिखित है---

(क) प्रभावी प्रबंध---- प्रबंधकों द्वारा अपने अधीनस्थ कर्मचारियों को अधिक अधिकार प्रदान करके अन्य महत्त्वपूर्ण कार्यों पर ध्यान केंद्रित करने के लिए अधिक समय की प्राप्ति होती है। अपने दिन-

प्रतिदिन के कार्यक्रमों से मुक्त होकर नए क्षेत्रों में अधिक उत्कृष्टतापूर्ण कार्य करने के सुअवसरों की भी प्राप्ति हो जाती है।

(ख) कर्मचारियों का विकास---- अंतरण के परिणामस्वरूप कर्मचारियों को अपनी योग्यता का उपयोग करने हेतु अधिक सुअवसरों की प्राप्ति होती है तथा उनकी प्रतिभा को अत्यधिक विकास मिल जाता है। इससे उनकी निपुणता का विकास होता है तथा वे ऐसे कार्यों को करने में सामर्थ्यवान हो जाते हैं, जो कठिन प्रकृति के होते हैं और वे अपने भविष्य को उन्नत बना लेते हैं। अत: अंतरण द्वारा भविष्य के लिए योग्य प्रबंधकों का निर्माण किया जाता है। अंतरण कर्मचारियों को उनकी योग्यता का उपयोग करने, अनुभवों को प्राप्त करने तथा स्वयं को उच्च पदों पर आसीन होने में मदद व बल प्रदान करता

(ग) कर्मचारियों को प्रेरणा---- अंतरण द्वारा कर्मचारियों की प्रेरणा अथवा योग्यता को विकसित किया जाता है। इसके कुछ मनोवैज्ञानिक लाभ भी हैं। जब एक उच्चाधिकारी अपने अधीनस्थ कर्मचारी को कार्य सुपुर्द करता है, तो यह मात्र कार्य का विभाजन ही नहीं, अपितु उच्च अधिकारी का अपने अधीनस्थ में विश्वास तथा अधीनस्थ कर्मचारी की अपने उच्च अधिकारी के प्रति वचनवद्धता ही होती है। उत्तरदायित्व द्वारा एक कर्मचारी में आत्मविश्वास को बढ़ावा दिया जाता है तथा विश्वास में सुधार लाया जाता है। वह स्वयं को प्रोत्साहित अनुभव करता है तथा भविष्य में भी अपने कार्य निष्पादन को उन्नतिशील बनाने का प्रयास करता है।

(घ) विकास का सरलीकरण---- अधिकार अंतरण द्वारा एक संगठन में उसकी वृद्धि होने में सहायता प्रदान की जाती है। इसके माध्यम से उच्च पदों पर नया कार्य करने हेतु शीघ्र ही कार्यबल प्राप्त हो जाता है। प्रशिक्षित तथा अनभवी कर्मचारी नए उत्पाद को शुरू करने के लिए महत्त्वपूर्ण कार्यों को संपन्न करने हेतु समर्थ होते हैं, जो वर्तमान कार्यपद्धति को नवीनतम रूप में सरलतापूर्वक परिवर्तित कर देते है ।

(ङ) प्रबंध सोपानिकी (पदानुक्रम) का आधार---- अधिकार अंतरण द्वारा अधिकारी-अधीनस्थ सम्बन्ध बनाया जाता है, जो प्रबंध पदानुक्रम का आधार है। यह अधिकार के प्रवाह का क्रम है, जो बताता है कि किसे किसको सूचना देनी है। संगठन में कार्य पर जिस सीमा तक अधिकारों का अंतरण किया जाता है, उसी सीमा तक वे प्रभावी होते हैं।

(च) उत्तम सामंजस्य----- अधिकार अंतरण के तत्त्व; जैसे–उत्तरदायित्व, अधिकार, उत्तरदेयता आदि क्षमता कर्तव्यों व जबावदेही (जो संगठन में विभिन्न स्तरों से संबद्ध होते हैं) व्यक्त करने में मदद करते हैं। इसके कारण कर्त्तव्यों की पुनरावृत्ति व लीपापोती रुकती है, क्योंकि प्रत्येक स्तर पर क्या कार्य करना है, इसकी स्पष्ट व्याख्या की हुई होती है। इस प्रकार का स्पष्टीकरण विभिन्न स्तरों, विभागों व

प्रबंध के कार्यों में प्रभावशाली सामंजस्य स्थापित करने में सहायता प्रदान करता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि 'अंतरण प्रभावी संगठन का आधारभूत तत्त्व है।

प्रश्न 31. अधिकार अन्तरण एवं विकेन्द्रीकरण में अन्तर स्पष्ट कीजिए।

अथवा

केन्द्रीकरण और विकेन्द्रीकरण के बीच अन्तर करें। [NCERT]

उत्तर--- अधिकार अंतरण एवं विकेंद्रीकरण में तुलना आधार

आधार	अधिकार अंतरण	विकेंद्रीकरण
प्रकृति	यह एक आवश्यक कार्य है क्योंकि कोई भी व्यक्ति सभी कार्यों को अकेला नहीं कर सकता।	यह एक ऐच्छिक नीति निर्धारण है। यह शीर्ष प्रबंधक के विवेकानुसार किया जाता है।
कार्य की स्वतंत्रता	इसमें उच्चाधिकारियों का अधिक नियंत्रण होता है। अत: अपने निर्णय लेने की स्वतंत्रता कम ही होती है।	इसमें कार्यकारी प्रबंधकों पर नियंत्रण कम होता है। अत: कार्य करने की स्वतंत्रता अधिक होती है।
क्षेत्र	इसका क्षेत्र सीमित होता है, क्योंकि इसकी सीमा उच्चाधिकारियों तथा उनके अधीनस्थों तक ही सीमित होती है।	इसका क्षेत्र विस्तृत होता है, क्योंकि इसमें अधिकारों का अंतरण निम्नतम स्तर तक बढ़ाया जाता है।
स्थिति	यह एक प्रक्रिया है, जिसका कार्य-विभाजन में अनुसरण किया जाता है।	यह शीर्ष प्रबंधकों द्वारा निर्धारित नीतियों का परिणाम है।
उद्देश्य	इसका उपयोग प्रबंधक का भार कम करने के लिए होता है।	इसका उपयोग अधीनस्थों के संगठन की भूमिका में वृद्धि करने के लिए तथा उन्हें अधिक स्वायत्तता देकर किया जाता है।

प्रश्न 32. कार्यात्मक संगठन ढाँचा व प्रभागीय संगठन ढाँचा में अन्तर स्पष्ट कीजिए।

उत्तर- कार्यात्मक संगठन ढाँचा व प्रभागीय संगठन ढाँचा में अन्तर निम्नलिखित हैं---

कार्यात्मक संगठन ढाँचा--- कार्यात्मक ढाँचे की संरचना सम्पर्ण कार्य को बडे-बड़े कार्यात्मक विभागों में विभाजित करके की जाती है अर्थात् समान प्रकृति सभी कार्यों को संगठन के एक भाग में रखकर एक

समन्वयकर्ता अध्यक्ष के नियंत्रण में किया जाता है। अतः सभी विभाग समन्वयकर्ता अध्यक्ष या प्रधान को रिपोर्ट करते हैं। उदाहरण के लिए-एक निर्णायक प्रतिष्ठान के अंतर्गत प्रमुख कार्य का विभाजन क्रय, उत्पादन, विपणन, लेखा व कार्मिकों के रूप में होता है। इन विभागों को आगे उपवर्गों में बाँटा जा सकता है। इस प्रकार कार्यात्मक संगठन एक संगठनात्मक प्रतिरूप है, जिसके समूह समान होते हैं या जिसमें सम्बन्धित कार्यों को साथ-साथ किया जाता है।

प्रभागीय संगठन ढाँचा---- बहुत-से वृहद् संगठनों द्वारा (जो विभिन्न प्रकार की गतिविधियों में शामिल हैं) स्वयं को आसान व मूलभूत कार्यात्मक ढाँचे से पृथक् विभागीय संगठन ढाँचे में पुनर्गठित किया गया है, जो उनकी गतिविधियों हेतु अत्यधिक उपयोगी है। वास्तव में प्रभागीय संगठन के ढाँचे का रूप उन उद्यमों हेतु ठीक है, जो बाजार में एक से अधिक उत्पादों की पूर्ति करते हैं। इसका कारण यह है कि प्रत्येक संगठन द्वारा बहुत-से सदृश कार्यों को सम्पन्न किया जाता है तथा विभिन्न प्रकार के उत्पादों में विविधता लाई जाती है, क्योंकि उठती हुई विस्तृत जटिलताओं से सहयोग करने हेतु अत्यधिक विकसित व ढाँचागत डिजाइन की आवश्यकता होती है। प्रभागीय ढाँचे के अंतर्गत अलग व्यावसायिक इकाई अथवा प्रभाग का संगठन ढाँचा सम्मिलित होता है। प्रत्येक इकाई में एक प्रभागीय प्रबंधक होता है, जो कार्य को निष्पादित करने के लिए उत्तरदायी होता है और इकाई पर उसका पूर्ण आधिपत्य होता है। विभिन्न निर्मित उत्पादों के आधार पर ही जनशक्ति का वर्गीकरण किया जाता है। प्रत्येक विभाग में बहुत-से कार्य होते हैं; जैसे–विपणन, उत्पादन, क्रय, वित्त आदि और ये सभी संयुक्त लक्ष्य की प्राप्ति के लिए एक-साथ कार्य करते हैं। प्रत्येक प्रभाग स्वयं में निपुण होता है, जिससे उत्पादन संबंधी सभी कार्यों में निपुणता का विकास होता है। अन्य शब्दों में, प्रत्येक प्रभाग कार्यात्मक ढाँचे की ओर अभिमुख होता हुआ प्रतीत होता है। प्रभाग से बाहर कार्य किसी विशिष्ट उत्पाद के संदर्भ में भिन्न-भिन्न हो सकते हैं। इसके अलावा प्रत्येक प्रभाग द्वारा लाभ के केंद्र के रूप में कार्य किया जाता है जबकि प्रभाग का प्रधान, प्रभाग के लाभ या हानि के लिए उत्तरदायी होता है। उदाहरण के लिए-एक बड़ी कम्पनी के प्रभाग प्रसाधन व वस्त्र आदि भी हो सकते हैं।

प्रश्न 33. मानव संसाधन प्रबन्धन द्वारा किस प्रकार के कार्यों का निष्पादन किया जाता है?

उत्तर- मानव संसाधन प्रबन्धन द्वारा निम्नलिखित कार्यों का निष्पादन किया जाता है----

1. योग्य कर्मचारियों की खोज का अनुमान लगाना,

2. कर्मचारी-पूर्ति को ध्यान में रखते हुए रिक्तता का विश्लेषण करना,

3. कर्मचारियों की भर्ती की योजना तैयार करना,

4. योग्य व्यक्तियों की खोज करना,

5. कार्यों का विश्लेषण; जैसे–विविध कार्यों के सम्बन्ध में सूचनाएँ इकट्ठी करना तथा कार्यों का विवरण तैयार करना,

6. क्षतिपूर्ति एवं प्रोत्साहन योजनाओं का विकास करना,

7. कुशल निष्पादन तथा जीवन-वृद्धि के लिए कर्मचारियों को प्रशिक्षण देना तथा उनका विकास करना,

8. श्रम-सम्बन्ध तथा संघ-प्रबन्ध सम्बन्धों का अनुरक्षण तथा रख-रखाव करना,

9. शिकायतों का निराकरण करना,

10. सामाजिक सुरक्षा एवं कर्मचारियों के लिए कल्याणकारी योजनाएँ बनाना,

11. कानुनी मामले व कानूनी पेंचों से कम्पनी की सुरक्षा तथा बचाव करना आदि।

प्रश्न 34. भर्ती के आन्तरिक स्रोतों के प्रमुख गुण बताइए।

अथवा

भर्ती के आंतरिक स्रोतों को क्यों अधिक किफायती माना जाता है? [NCERT]

उत्तर- भर्ती के आन्तरिक स्रोतों के प्रमुख गुण निम्नलिखित हैं---

1. अभिप्रेरणा में वृद्धि---- सभी आन्तरिक स्रोतों तथा विशेष रूप से पदोन्नति द्वारा भर्ती किए जाने पर कर्मचारियों की अभिप्रेरणा में वृद्धि होती है।

2. मनोबल में वृद्धि---- आन्तरिक स्रोतों द्वारा श्रमिकों के भर्ती किए जाने से श्रमिकों के मनोबल में वृद्धि

होती है, इससे वह अधिक परिश्रम एवं लगन से कार्य करते हैं।

3. मितव्ययी---- इस प्रक्रिया के अन्तर्गत संगठन को कर्मचारियों के प्रशिक्षण पर बहुत कम व्यय करना पड़ता है।

4. पदोन्नति के अधिक अवसर---- इस प्रक्रिया द्वारा कर्मचारियों की पदोन्नति के अवसरों में अत्यधिक वृद्धि होती है, इससे कर्मचारी सन्तुष्ट होते हैं और उनकी कार्यक्षमता में भी वृद्धि होती है।

5. सरल चयन---- इस प्रक्रिया द्वारा भर्ती करने पर उच्च पदों पर चयन करना आसान हो जाता है क्योंकि

संस्था के अन्दर कार्यरत व्यक्तियों को संस्था की कार्यपद्धति का पूरा ज्ञान होता है।

6. शान्ति का वातावरण--- इस प्रक्रिया के अन्तर्गत पदोन्नति के अवसर अधिक होने के कारण संगठन में शान्ति का वातावरण बना रहता है।

7. अन्य विभागों में नियुक्ति---- इस प्रक्रिया के अन्तर्गत विभिन्न विभागों में अतिरिक्त घोषित कर्मचारियों को संस्था के अन्य विभागों में भी नियुक्त किया जा सकता है।

प्रश्न 35. मानव संसाधन प्रबन्ध के अंग के रूप में नियुक्तिकरण को समझाइए।

उत्तर- नियुक्तीकरण सभी प्रबंधकों के लिए एक अनिवार्य प्रक्रिया है। यह एक विशिष्ट तथा भिन्न प्रक्रिया है जिसमें मानवीय संबंधों के अनेक पक्ष हैं तथा जिन्हें ध्यान रखना आवश्यक है। किसी भी संगठन के अंतर्गत सभी पदों पर योग्य कर्मचारियों को नियुक्त करना एक प्रबंधक का ही कार्य है। नियुक्तीकरण का संबंध संगठन से बहुत ही निकटता से है क्योंकि जब सांगठनिक ढाँचे तथा पदों का निर्धारण हो जाता है, तब इन पदों पर कार्य करने हेतु कर्मचारियों की जरूरत होती है। इसके पश्चात् संगठन के लक्ष्यों को पूर्ण करने के लिए इन्हें प्रशिक्षण व अभिप्रेरित करने की जरूरत होती है। इस कारण नियुक्तीकरण को प्रबंधन के एक विस्तृत कार्य के रूप में देखा जा सकता है।

नियुक्तीकरण प्रक्रिया का संबंध प्रबंधन के मानवीय तत्त्वों से है। संगठन के मानव संसाधनों का प्रबंधन एक महत्त्वपूर्ण कार्य है, क्योंकि किसी भी संस्थान की सफलता इसी पर निर्भर होती है कि कार्यों को कितनी कुशलतापूर्वक निष्पादित किया जा सकता है। कोई भी संगठन अपने उद्देश्यों को पूर्ण करने में कितना सफल है इसका निर्धारण मानव संसाधनों की योग्यता, अभिप्रेरणा एवं उनके निष्पादन के अनुसार होता है। अत: यह भी दायित्व प्रबंधकों का ही है कि वे प्रत्यक्षत: उन व्यक्तियों से मिलें तथा चयन करें, जो संगठन हेतु कार्य करें। प्रबंधक जब तक नियुक्तीकरण का कार्य करता है, तब तक उसकी भूमिका कुछ सीमित होती है। उनमें से कुछ उत्तरदायित्व ये हैं-नए कर्मचारियों का संस्था में प्रवेश, उचित समय पर उचित व्यक्तियों की नियुक्ति, प्रशिक्षण द्वारा निष्पादन में सुधार, उनकी योग्यताओं का विकास, उनके शारीरिक स्वास्थ्य व भौतिक सुविधाओं की सुरक्षा तथा उनका मनोबल बनाए रखना। प्रबंधकों को छोटी संस्थाओं में उन सभी दायित्वों का भी निर्वाह करना पड़ता है, जो कर्मचारियों के वेतन, कल्याण तथा उनकी कार्य-स्थितियों से संबंधित हैं।

जैसे-जैसे संगठन का आकार बढ़ता है, वैसे ही कर्मचारियों की संख्या में भी बढ़ोतरी होती है। पृथक् से एक मानव संसाधन विभाग की स्थापना की जाती है, जिसमें मानवीय प्रबंध से संबंधित विशेषज्ञ शामिल होते हैं। मानवीय संसाधन प्रबंधन एक विशिष्ट क्षेत्र है, जिसमें विषय-वस्तु से संबंधित बहुत-से विशेषज्ञों की जरूरत होती है। किसी व्यवसाय का आकार मानवीय संसाधन विभाग के आकार और

उसमें कार्य करने वाले मानव संसाधन विशेषज्ञों की संख्या से भी ज्ञात किया जा सकता है। किसी वृहद स्तर की कम्पनी के अंतर्गत, स्वयं मानव संसाधन विभाग में ही विभाग की सभी क्रियाओं हेतु अलग-अलग विशेषज्ञ होते हैं।

प्रश्न 36. भर्ती के आन्तरिक स्रोतों के प्रमुख दोष/सीमाएँ बताइए।

उत्तर- भर्ती के आन्तरिक स्रोतों के प्रमुख दोष या कमियाँ निम्नलिखित हैं—

1. संस्था में नए ज्ञान के प्रवेश पर रोक---- इस प्रक्रिया के अन्तर्गत बाहर से भर्ती के अवसर समाप्त हो जाने के कारण संस्था को अधिक योग्य कर्मचारियों की सेवाएँ प्राप्त नहीं हो पाती हैं।

2. अयोग्य कर्मचारियों की पदोन्नति---- इस प्रक्रिया में यह आवश्यक नहीं है कि सभी योग्य व्यक्तियों की ही पदोन्नति हो, अयोग्य कर्मचारी को भी पदोन्नत किया जा सकता है।

3. कार्य निष्पादन में कमी आना----- यह प्रक्रिया कर्मचारियों में निश्चित पदोन्नति की भावना को तो आग्रत करती है। इस कारण कर्मचारी सुस्त बन जाते हैं तथा उनके कार्य निष्पादन में भी कमी आती जाती है।

4. नए संगठनों हेतु उपयुक्त न होना—--- यह प्रक्रिया केवल पुराने संगठनों हेतु उपयोगी रहती है। नए संगठनों को बाह्य स्रोत का ही प्रयोग करना पड़ता है।

5. समस्या का पुरा समाधान न होना---- इस स्रोत से श्रमिकों की भर्ती से संस्था की श्रम समस्या पूरी तरह से हल नहीं हो पाती। उसे बाह्य स्रोत का उपयोग करना ही पड़ता है।

6. उत्पादकता में कमी होना---- कर्मचारियों के निरन्तर स्थानान्तरण से प्राय: संस्था की उत्पादकता में कमी आ जाती है।

प्रश्न 37. चयन परीक्षाएँ क्या होती हैं? किन महत्त्वपूर्ण परीक्षाओं का उपयोग कर्मचारियों के चयन के लिए किया जाता है?

उत्तर- चयन परीक्षाएँ-रोजगार अथवा चयन परीक्षाएँ एक ऐसा उपकरण है (कागज व पेंसिल अथवा अभ्यास) जो व्यक्तियों की विशेषताओं को मापती है। ये विशेषताएँ भिन्न श्रेणी की क्षमताओं (जैसे- शारीरिक निपुणता, बुद्धि या व्यक्तित्व) से संबंधित हो सकती हैं।

महत्त्वपूर्ण परीक्षाएँ जिनका उपयोग कर्मचारियों के चयन के लिए किया जाता है—

(i) बुद्धि परीक्षाएँ--- यह उन आवश्यक मनोवैज्ञानिक परीक्षाओं में से एक है, जिसका उपयोग व्यक्ति के बुद्धि-कोष के स्तर के मापन हेत किया जाता है। यह व्यक्ति के निर्णय लेने अथवा सीखने की योग्यता तथा जाँच-पड़ताल की योग्यता को मापने का संकेतक है।

(ii) कौशल परीक्षा---- इसके द्वारा व्यक्ति के नए कौशल को सीखने की संभाव्य कुशलता को मापा जाता है तथा यह व्यक्ति के विकास करने की क्षमता का संकेत भी करती है। इस प्रकार की परीक्षाएँ व्यक्ति के भविष्य में सफलता के स्तर अथवा अंक को जानने का एक अच्छा संकेतक हैं।

(iii) व्यक्तित्व परीक्षाएँ– ये व्यक्ति के संवेगों, परिपक्वता, प्रतिक्रियाओं तथा उनके जीवन-मूल्यों को जानने में संकेत प्रदान करती हैं। ये परीक्षाएँ पूरे व्यक्तित्व की जाँच करने में सहायक हैं, इस कारण इनका निर्माण व क्रियान्वयन जटिल कार्य है।

(iv) व्यापार परीक्षा---- इन परीक्षाओं द्वारा व्यक्ति के उपलब्ध कौशलों को मापा जाता है। इसके अतिरिक्त इनके द्वारा ज्ञान के स्तर तथा उनके क्षेत्र की व्यावसायिक व तकनीकी प्रशिक्षण की कुशलता को भी मापा जाता है। कौशल परीक्षा व व्यापार परीक्षा में महत्त्वपूर्ण अंतर यह है कि कौशल परीक्षा द्वारा व्यक्ति के कौशल अर्जित करने की संभावित क्षमता को मापा जाता है तथा व्यापार परीक्षा द्वारा व्यक्ति के वास्तविक कौशल को मापा जाता है, जो उनके पास पहले से ही है।

(v) अभिरुचि परीक्षा---- प्रत्येक व्यक्ति को किसी विशेष कार्य के प्रति आकर्षण रहता है। अभिरुचि परीक्षाओं का उपयोग यह ज्ञात करने हेतु किया जाता है कि उसकी रुचि किस प्रकार की है अथवा उसका रुझान किस प्रकार के कार्य की ओर है।

प्रश्न 38. प्रशिक्षण और विकास के बीच अन्तर स्पष्ट कीजिए। [NCERT]

उत्तर--- प्रशिक्षण तथा विकास में अन्तर

क्र०सं०	**अन्तर का आधार**	**प्रशिक्षण**	**विकास**
1	आशय	यह ज्ञान व कौशल में वृद्धि की एक प्रक्रिया होती है।	यह सीखने की प्रक्रिया होती है।
2	उद्देश्य	यह कर्मचारियों को बेहतर कार्य-निष्पादन हेतु समर्थ/योग्य बनाती है।	यह कर्मचारी को पूर्ण रूप से विकास के लिए योग्य बनाती है।
3	जॉब/कॅरियर	यह जॉब प्रधान क्रिया होती है।	यह कॅरियर-प्रधान क्रिया होती है।
4	क्षेत्र	इसका क्षेत्र सीमित होता है।	इसका क्षेत्र विस्तृत होता है तथा इसमें प्रशिक्षण भी शामिल होता है।

5	कार्य/व्यक्ति	यह कार्य-केन्द्रित होता है।	यह व्यक्ति-केन्द्रित होता है।

प्रश्न 39. एक व्यक्ति को प्रशिक्षण देने तथा संगठन को प्रशिक्षित करने के क्या लाभ हैं?

उत्तर- कर्मचारियों को प्रशिक्षण देने से निम्नलिखित लाभ प्राप्त होते हैं---

1. कर्मचारियों के ज्ञान एवं कौशल में वृद्धि होती है।

2. कार्य का भली प्रकार से निष्पादन कर्मचारी के अधिक धनोपार्जन में सहायक सिद्ध होता है।

3. प्रशिक्षण द्वारा कर्मचारी अधिक कुशल हो जाते हैं तथा मशीनों पर कुशलतापूर्वक कार्य करने लगते हैं।

4. प्रशिक्षण से कर्मचारियों के मनोबल व सन्तोष में भी वृद्धि होती है।

प्रशिक्षण से संगठन को लाभ

प्रशिक्षण से एक संगठन को निम्नलिखित लाभ प्राप्त होते हैं---

1. कर्मचारियों को प्रशिक्षित किए जाने से संगठन की उत्पादकता में वृद्धि होने के साथ-साथ लाभ में भी वृद्धि होती है।

2. अप्रशिक्षित कर्मचारियों द्वारा बार-बार गलती हो जाने से होने वाली हानि को भी कम किया जा सकता है।

3. प्रशिक्षण भावी प्रबन्धकों को तैयार करता है ताकि वह आवश्यकता पड़ने पर आकस्मिक स्थिति से उत्पन्न संकट को सँभाल सके।

4. प्रशिक्षण से कर्मचारियों के मनोबल में भी वृद्धि होती है तथा उसके कार्य को छोड़कर जाने में कमी आती है।

5. प्रशिक्षण तेजी से परिवर्तन होने वाली तकनीकी तथा आर्थिक वातावरण से भी प्रभावपूर्ण प्रतिक्रिया प्राप्त करने में सहायता प्रदान करता है।

प्रश्न 40. 'ऑन द जॉब विधियों से आप क्या समझते हैं? वर्णन कीजिए।

उत्तर- ऑन द जॉब विधि से आशय 'कार्य करते समय करके सीखना' से है---

(क) प्रशिक्षणार्थी कार्यक्रम---- इसके अंतर्गत प्रशिक्षणार्थी को एक कार्य में निपुण कर्मचारी के नियंत्रण में रखा जाता है। इन कार्यक्रमों की रूपरेखा उच्च स्तर के कौशल को प्राप्त करने हेतु बनाई जाती है। जो लोग विशिष्ट कौशल वाले व्यापार में प्रवेश चाहते हैं; जैसे-बिजली का काम, प्लम्बर का काम अथवा लुहार का काम। इन्हें स्वयं को विशेषज्ञ का दर्जा अर्जित करने से पूर्व शिक्षार्थी प्रशिक्षण प्राप्त करना होता है। इन शिक्षार्थियों को एक समान अवधि का प्रशिक्षण दिया जाता है, जिसमें तीव्र तथा मंद गति से सीखने वाले शिक्षार्थियों (दोनों) को रखा जाता है। मंद गति से सीखने वालों को अतिरिक्त प्रशिक्षण की आवश्यकता पड़ सकती है।

(ख) शिक्षण (कोचिंग)– इस विधि के माध्यम से उच्चाधिकारी तथा प्रशिक्षण किसी प्रशिक्षणार्थी को एक शिक्षक के समान सिखाता है। परामर्शक अथवा शिक्षक आपसी परामर्श से उददेश्यों को निर्धारित करते हैं तथा सुझाव देते हैं कि इन उद्देश्यों को किस प्रकार पूर्ण करना है। निश्चित समयावधि में शिक्षार्थी के विकास का पुनरीक्षण किया जाता है तथा सुझाव दिया जाता है कि उनके व्यवहार व निष्पादन में किस प्रकार के परिवर्तन की आवश्यकता है। प्रशिक्षणार्थी प्रत्यक्ष तौर पर उच्चाधिकारी के अधीन कार्य करता है तथा प्रबंधक भी प्रशिक्षणार्थी के प्रशिक्षण की पूर्ण जिम्मेदारी या दायित्व स्वयं के ऊपर लेता है। प्रशिक्षणार्थी को आधारभूत रूप से इस प्रकार तैयार/प्रशिक्षित किया जाता है कि वह उच्चाधिकारी को उसके कुछ दायित्वों से भार-मुक्त कर सके। इसके द्वारा प्रशिक्षणार्थी को कार्य सीखने का भी एक सुअवसर प्रदान किया जाता है।

(ग) स्थानबद्ध प्रशिक्षण (इंटर्नशिप प्रशिक्षण)/संयुक्त प्रशिक्षण परियोजना---- यह प्रशिक्षण का एक संयुक्त प्रशिक्षण कार्यक्रम है, जिसमें शैक्षणिक संस्थान व व्यावसायिक फर्मों द्वारा सहयोग दिया जाता है। चयनित प्रशिक्षणार्थियों द्वारा एक निर्धारित/निश्चित अवधि हेतु एक नियमित अध्ययन किया जाता है। वे उसी कार्यालय/फैक्टरी में व्यावहारिक ज्ञान व कौशल प्राप्त करने हेतु कार्य भी करते हैं।

(घ) कार्य बदली---- इस प्रकार के प्रशिक्षण के अंतर्गत प्रशिक्षणार्थी का एक विभाग से दूसरे विभाग अथवा

एक कार्य से दसरे कार्य में स्थानांतरण को शामिल किया जाता है। यह प्रशिक्षणार्थी को व्यवसाय के विभिन्न अंगों को विस्तृत रूप से समझने तथा किसी संगठन द्वारा किस प्रकार पूर्ण रूप से कार्य किया जाता है, इस निमित्त समर्थ बनाता है। इसके अंतर्गत प्रशिक्षणार्थी पूर्ण रूप से कार्यों में शामिल होता है तथा उसे अपनी क्षमता व योग्यताओं की जाँच-पड़ताल करने का भी अवसर प्राप्त होता है। कार्य बदली द्वारा प्रशिक्षणार्थी को अन्य कर्मचारियों से भी बातचीत करने का अवसर दिया जाता है, जो भविष्य में विभिन्न विभागों में सहयोग बढ़ाने में सहायता करती है। जब कर्मचारी इस पद्धति द्वारा प्रशिक्षित होते हैं तो संगठन को पदोन्नति, स्थानान्तरण अथवा स्थानापन्न करने के समय सरलता होती है।

प्रश्न 41. 'ऑफ द जॉब विधियों का वर्णन कीजिए।

उत्तर--- ऑफ द जॉब विधियाँ

(क) कक्षा-कक्ष व्याख्यान/सम्मेलन---- व्याख्यान या सम्मेलन उपागम विशेष सूचना नियम, प्रक्रिया अथवा कार्य-प्रणाली को संप्रेषित करने हेतु अत्यधिक अनुकूल है। प्रायः एक औपचारिक कक्षा-कक्ष प्रस्तुति को दृश्य-श्रव्य सामग्री अथवा प्रदर्शन अधिक रुचिकर बनाते हैं, साथ ही प्रतिधारण को भी बढ़ाते हैं तथा यह जटिल बिंदुओं के स्पष्टीकरण हेतु एक अच्छा माध्यम भी है।

(ख) चलचित्र---- इसके द्वारा सूचनाएँ देने तथा सुस्पष्ट तरीके से कौशलों को प्रदर्शित किया जाता है, जो

सरलता से किसी अन्य तकनीकी द्वारा नहीं की जा सकती है। यह सम्मेलन व चर्चा के साथ कुछ विशेष स्थितियों में अत्यधिक प्रभावी विधि है।

(ग) समस्यात्मक अध्ययन (केस स्टडी)---- केस अध्ययन के माध्यम से संगठन के वास्तविक अनुभवों के आधार पर प्रयास करते हैं कि किस प्रकार संभावित वास्तविक समस्याओं को यथार्थ रूप से वर्णित किया जाए, जो प्रबंधकों के समक्ष आए हैं। प्रशिक्षणार्थी समस्याओं का निर्धारण, कारणों का विश्लेषण करने तथा वैकल्पिक समाधान निकालने में (वह समाधान जिस पर वे विश्वास करते हैं कि यह उत्तम है) तथा उसको क्रियान्वित करने में केसों का अध्ययन करते हैं।

(घ) कम्प्यूटर प्रतिमान---- यह इस प्रकार के कार्य वातावरण के निर्माण में सहायक है, जो कम्प्यूटर में प्रोग्राम द्वारा कार्य की वास्तविक स्थितियों की नकल करने में सक्षम है तथा इससे प्रशिक्षणार्थी बगैर किसी जोखिम के अथवा कम लागत पर सीख सकता है, जो गलतियाँ/त्रुटियाँ वह वास्तविक जीवन-स्थिति में कर सकता है।

(ङ) प्रकोष्ठ प्रशिक्षण---- इस प्रणाली के अंतर्गत कर्मचारी अपने कार्य को उन्हीं उपकरणों पर सीखते हैं जिन पर उन्हें कार्य करना है, परंतु इस प्रशिक्षण को वास्तविक कार्यस्थल से हटकर दिया जाता है। प्रशिक्षण कक्ष में वास्तविक कार्यस्थल के आधार पर वातावरण उत्पन्न किया जाता है। कर्मचारियों द्वारा वहीं उपकरण, फाइलें व वस्तुएँ प्रयोग की जाती हैं जैसी कार्यालय में प्रयोग की जाती हैं। इस बात का ध्यान विशेष रूप से रखा जाता है कि कर्मचारी मूल्यवान उपकरणों तथा मशीनों का उपयोग कुशलता से कर सकें।

(च) नियोजित अनुदेश/प्रशिक्षण---- इस प्रणाली के अंतर्गत कुछ पूर्व-नियोजित विशिष्ट कौशलों अथवा सामान्य ज्ञान के अधिग्रहण को समाविष्ट किया जाता है। यह प्रणाली सूचनाओं को अर्थपूर्ण इकाइयों में विभाजित करती है तथा इन्हीं इकाइयों को उपयुक्त विधि से क्रमबद्ध किया जाता है जिससे वे

एक तार्किक व क्रमिक अधिगम पैकेज के रूप में बन सकें; जैसे-सरल से कठिन की ओर। प्रशिक्षणार्थी द्वारा इन इकाइयों को पढ़ते हुए प्रश्नों का उत्तर दिया जाता है तथा रिक्त स्थानों की पूर्ति की जाती है।

प्रश्न 42. प्रशिक्षण को परिभाषित कीजिए। यह 'शिक्षा' से किस प्रकार भिन्न है?

उत्तर- "प्रशिक्षण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा कर्मचारियों के दृष्टिकोण, कौशल तथा उनकी योग्यताओं में वृद्धि होती है ताकि वह अपने विशिष्ट कार्यों का निष्पादन एक अच्छे ढंग से कर सके।"

प्रशिक्षण एवं शिक्षा में अन्तर

क्र०सं०	प्रशिक्षण	शिक्षा
1.	यह नए-नए कौशलों को सीखने तथा अपने ज्ञान को प्रयोग में लाने की प्रक्रिया होती है।	इससे तार्किक तथा विवेकपूर्ण बुद्धि का विकास होता है।
2.	यह कर्मचारियों के वर्तमान के कार्य-निष्पादन में सुधार लाती है तथा उन्हें अन्य किसी भी नए कार्य के लिए प्रेरित करती है।	यह मूलभूत सिद्धान्तों को समझाती है तथा विश्लेषण करने की क्षमता को विकसित करती है।
3.	इस प्रक्रिया के द्वारा कर्मचारियों के कौशल में वृद्धि होने के साथ-साथ क्षमता तथा योग्यता में भी वृद्धि होती है जिससे वह अपने विशिष्ट कार्यों का उचित निष्पादन कर सके।	इस प्रक्रिया के द्वारा कर्मचारियों के ज्ञान एवं बोध में वृद्धि होती है। यह ज्ञान का बोध और उसकी व्याख्या है।
4.	इसका प्रयोग संगठन के लक्ष्यों तक ही सीमित है।	इसका क्षेत्र प्रशिक्षण से विस्तृत होता है।
5.	यह किसी संगठन में किया जाता है।	यह किसी विद्यालय/विश्वविद्यालय में दी जाती है।
6.	इसके लिए शिक्षा अति आवश्यक होती है।	इसके लिए प्रशिक्षण की कोई आवश्यकता नहीं होती है।

प्रश्न 43. निर्देशन से क्या तात्पर्य है? निर्देशन कार्य की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

उत्तर- साधारणत: निर्देशन से तात्पर्य निर्देश देने और व्यक्तियों के कार्य में मार्गदर्शन करने से है। दिन-प्रतिदिन हमारे समक्ष ऐसी बहुत-सी स्थितियाँ आती हैं; जैसे-एक शिक्षक अपने छात्रों को निर्देश देता है कि वे किस प्रकार अपने दत्त कार्य (असाइनमेण्ट) को पूर्ण करें, कोई होटल प्रबंधक अपने कर्मचारियों को किसी कार्यक्रम को आयोजित करने हेत निर्देश देता है, एक चलचित्र निदेशक अपने कलाकारों को निर्देश देता है कि वे फिल्म में कैसे अभिनय करें इत्यादि। अतः इन सभी स्थितियों में हम देखते हैं कि पूर्व निर्धारित उद्देश्यों को पूरा करने के लिए निर्देशन किया गया है।

सगठन के प्रबंधन के संदर्भ में निर्देशन व्यक्तियों को निर्देश देने, उनका मार्गदर्शन करने, परामर्श देने नामभारत करने तथा कशल नेतत्व प्रदान करने की प्रक्रिया है जिसका उद्देश्य सगठन क उद्देश्यों की पति करना है। यहाँ आप भली-भाँति अवलोकन कर सकते हैं कि निर्देशन केवल संप्रेषण न होकर, यह अन्य बहुत-से तत्त्वों को भी शामिल करता है। जैसे–पर्यवेक्षण नेतत्व व अभिप्रेरणा। निर्देशन सभी प्रबंधकों द्वारा निष्पादित प्रमुख प्रबंधकीय क्रियाओं में से एक है। अत: निर्देशन एक ऐसी प्रबंधकीय प्रक्रिया है, जो संस्था के सम्पर्ण कार्यकाल तक चलती है। निर्देशन की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन नीचे किया गया है

(क) निर्देशन क्रिया को प्रारंभ करता है---– निर्देशन एक प्रमुख प्रबंधकीय कार्य है। इसका निष्पादन एक प्रबंधक को अन्य क्रियाएँ; जैसे-नियोजन, संगठन, नियंत्रण व नियुक्तिकरण आदि के साथ ही सगठन में अपने उत्तरदायित्वों का निर्वहन करते हुए करना पड़ता है। जहाँ अन्य कार्यों का संबंध क्रिया के शुरू होने से पूर्व की तैयारी से है, वहाँ निर्देशन द्वारा संगठन में क्रिया को शुरू किया जाता है।

(ख) निर्देशन प्रबंधन के प्रत्येक स्तर पर निष्पादित होता है–--- प्रत्येक प्रबंधक (उच्चाधिकारी से लेकर पर्यवेक्षक तक) द्वारा निर्देशन क्रिया को निष्पादित किया जाता है। जहाँ पर भी अधिकारी-अधीनस्थ संबंध होते हैं, वहाँ पर निर्देशन की प्रक्रिया स्वत: ही होती है।

(ग) निर्देशन एक निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है–-- निर्देशन एक सतत् तथा संगठन के सम्पूर्ण कार्यकाल में चलने वाली प्रक्रिया है। साथ ही यह निरपेक्ष (बगैर ध्यान रखे) भी है कि कौन व्यक्ति प्रबंधकीय पदों पर कार्यरत है। आप देख सकते हैं कि टाटा, इन्फोसिस, HCL तथा BHEL जैसी संस्थाओं में प्रबंधक बदल सकते हैं, लेकिन निर्देशन की प्रक्रिया लगातार चलती रहती है. क्योंकि निर्देशन के बगैर सांगठनिक क्रियाएँ आगे नहीं चल सकतीं।

(घ) निर्देशन ऊपर से नीचे की ओर प्रवाहित होता है–पहले निर्देशन उच्च स्तर पर शुरू होता है तथा इसके पश्चात् सांगठनिक अनुक्रम के माध्यम से नीचे की दिशा में प्रवाहित होता है। यहाँ इसका तात्पर्य यह है कि प्रत्येक प्रबंधक अपने समीपस्थ अधीनस्थ को निर्देशित कर सकता है और अपने उच्चाधिकारी से निर्देश लेता है।

प्रश्न 44. निर्देशन के प्रमुख तत्त्वों को समझाइए।

उत्तर- निर्देशन के तत्त्व-निर्देशन के निम्नलिखित तत्त्व होते हैं

1. पर्यवेक्षण-पर्यवेक्षण एक ऐसी प्रक्रिया है जो वांछित उद्देश्यों की पूर्ति हेतु कर्मचारियों के प्रयत्न के मार्गदर्शन एवं अन्य संसाधनों के उपयोग से सम्बन्धित है। इसके अन्तर्गत एक व्यक्ति अपने

अधीनस्थ कर्मचारियों द्वारा किए गए कार्यों का निरीक्षण करता है तथा उन्हें कार्य करने का रास्ता भी बतलाता है। इस कार्य को करने वाला व्यक्ति 'पर्यवेक्षक' कहलाता है।

2. अभिप्रेरणा---- अभिप्रेरणा का साधारण अर्थ किसी व्यक्ति में निश्चित कार्य को करने की तत्परता को जाग्रत करना है। व्यक्तियों को अभिप्रेरित करने के लिए दो प्रकार की प्रेरणाएँ दी जाती हैं वित्तीय या मौद्रिक एवं अवित्तीय या अमौद्रिक। कुछ व्यक्तियों के लिए वित्तीय प्रेरणाएँ ज्यादा महत्त्वपूर्ण होती हैं, जबकि अन्य अवित्तीय प्रेरणाओं से ही प्रभावित हो जाते हैं। अवित्तीय प्ररेणाओं में नौकरी की सुरक्षा, पदोन्नति, उपलब्धि प्रमाण-पत्र आदि को सम्मिलित किया जाता है। अधीनस्थ कर्मचारियों में काय बाँट देने के उपरान्त उनसे सही कार्य लेने के लिए उन्हें अभिप्रेरित किया जाना आवश्यक है।

3. नेतृत्व---- नेतृत्व अन्य व्यक्तियों में किसी सामान्य उद्देश्य के पालन करने की इच्छा को जाग्रत करने की योग्यता है। यह किसी व्यक्ति का वह गुण है जिसके द्वारा वह अन्य व्यक्तियों का मार्गदर्शन करता है तथा नेता के रूप में उनके कार्यों का निर्देशन करता है। इसका प्रमुख उद्देश्य अपने अनुयायियों का निर्देशन करते हुए संस्था के पूर्व-निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करना है।

4. सम्प्रेषण या सन्देशवाहन---- सम्प्रेषण या सन्देशवाहन का आशय तथ्यों, विचारों, भावनाओं आदि को एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक हस्तान्तरण करने व समझने की कला से है। एक प्रबन्धक को अपने अधीनस्थों को लगातार यह बताना होता है कि उन्हें क्या करना है, कैसे करना है तथा कब करना है। दूसरी ओर अधीनस्थों की प्रतिक्रियाओं को जानना भी जरूरी है। इन समस्त कार्यों के लिए सम्प्रेषण आवश्यक होता है। इसके द्वारा संगठन में समन्वय का वातावरण तैयार होता है, अर्थात् यह आपसी समझ को बढ़ाकर सहयोग पैदा करता है तथा कर्मचारियों और संगठन में एकीकरण बनाता है।

प्रश्न 45. मास्लो द्वारा प्रतिपादित अभिप्रेरणा पदानुक्रम सिद्धान्त की आवश्यकता पर चर्चा करें। [NCERT]

उत्तर- मास्लो द्वारा प्रतिपादित अभिप्रेरणा पदानुक्रम सिद्धान्त की आवश्यकता---

अभिप्रेरणा अत्यधिक जटिल है, इसलिए बहुत-से शोधकर्ताओं (अन्वेषकों) द्वारा विभिन्न आयामों के आधार पर अभिप्रेरणा के संबंध में अध्ययन तथा कुछ सिद्धांतों का विकास किया गया है। ये सिद्धांत अभिप्रेरणा की अवधारणा को समझने में सहायता प्रदान करते हैं। इन सिद्धांतों में 'मास्लो का आवश्यकता क्रम' एक आधारभूत सिद्धांत है। आइए इसे विस्तारपूर्वक समझते हैं अब्राहम मास्लो एक प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक थे, जिनका एक उत्कृष्ट लेख वर्ष 1943 में प्रकाशित हुआ था। उनके द्वारा समग्र अभिप्रेरणा के सिद्धांतों के तत्त्वों की रूपरेखा संक्षेप में दी गई है। उनका यह सिद्धांत मानवीय

आवश्यकताओं पर आधारित था। अब्राहम मास्लो का अनुभव था कि प्रत्येक व्यक्ति के अंदर पाँच प्रकार की आवश्यकताएँ क्रमानुसार होती हैं, जिनका वर्णन निम्नलिखित है---

(क) आधारभूत/शारीरिक आवश्यकताएँ--- आधारभूत आवश्यकताएँ क्रम में सर्वाधिक आधारभूत हैं और व्यक्ति की प्रथम आवश्यकताएँ हैं। इस प्रकार की आवश्यकताओं के उदाहरण भूख, प्यास, छत, नींद तथा काम (सेक्स) इत्यादि हैं। वहीं सांगठनिक संदर्भ में इन सभी आवश्यकताओं की संतुष्टि आधारिक वेतन है।

(ख) सुरक्षा आवश्यकताएँ---- इन आवश्यकताओं द्वारा सुरक्षा तथा किसी भी शारीरिक व मनोवेगों की क्षति से बचाव प्रदान किया जाता है। उदाहरण के तौर पर-पद में सुरक्षा. सेवानिवृत्ति, आय स्रोत में नियमितता/स्थिरिकरण, पेंशन, योजना इत्यादि।

(ग) संस्था से जुड़ाव/संस्था से संबंध---- इन आवश्यकताओं का संबंध स्नेह, स्वीकृति अथवा मित्रता संस्था से संबंध जैसे भावों से संबंधित है।

(घ) मान-सम्मान (प्रतिष्ठा) आवश्यकता---- यह उन कारणों को शामिल करती है; जैसे-पद-स्वायत्तता, आत्म-सम्मान, आदर-सत्कार, पहचान तथा ध्यान इत्यादि

(ङ) आत्म-संतुष्टि आवश्यकताएँ---- यह क्रम-श्रृंखला में सबसे उच्च स्तर की आवश्यकता है। यह उस आवेग/भावना को बताती है, जो किसी के अंदर उस विद्यमान योग्यता की, जो वह बन सकता है। ये आवश्यकताएँ आत्म-संतुष्टि, विकास व उद्देश्यों की पूर्ति को शामिल करती हैं।

प्रश्न 46. नेतृत्व की परिभाषाएँ दीजिए तथा नेतृत्व की विशेषताओं को संक्षेप में बताइए।

उत्तर-- नेतृत्व का आशय

नेतत्व से आशय किसी व्यक्ति विशेष के उस गण से होता है जिसके द्वारा वह अन्य व्यक्तियों को सागठानक लक्ष्यों की पूर्ति हेतु प्रतिस्पर्धित करता है तथा नेता के रूप में उनकी क्रियाओं का संचालन भी करता है।

परिभाषाएँ

“नेतृत्व से आशय व्यक्ति के उस व्यावहारिक गण से है जिसके द्वारा वह अन्य लोगों का संगठित प्रयास से सम्बन्धित कार्य करने में मार्गदर्शन करता है।" ----बरनार्ड

“नेतृत्व एक पारस्परिक व्यवहारों का समह है जिसकी रूपरेखा कर्मचारियों को उद्देश्यों की प्राप्ति में सहयोग के लिए प्रभावित करने के लिए बनाई जाती है।" -ग्लूएक

नेतुत्व एक प्रक्रिया तथा संपत्ति दोनों ही है। नेतुत्व की प्रक्रिया बिना किसी दबाव के एक संगठित समझ सपस्या का क्रियाओं को प्रभावित तथा निर्देशित करती है जिसका उद्देश्य सामूहिक उद्देश्यों को प्रा करना ह। एक संपत्ति के रूप में नेतत्व उन व्यक्तियों की गणों तथा विशेषताओं का समूह है जो ऐसा सपना जाता है कि वे इस प्रकार का प्रभाव सफलतापर्वक नियोजित कर सकते हैं।"

- ग्रे तथा स्टेक

नेतृत्व की विशेषताएँ

नत्व का विविध परिभाषाएँ नेतृत्व की महत्त्वपूर्ण विशेषताओं को दर्शाती हैं, जो निम्नलिखित हैं---

(क) नेतृत्व द्वारा किसी व्यक्ति की दूसरों को प्रभावित करने की योग्यता को प्रदर्शित किया जाता है।

(ख) नेतृत्व द्वारा दूसरों के व्यवहार में परिवर्तन लाने का प्रयत्न किया जाता है।

(ग) नेतृत्व द्वारा नेता व अनुयायियों के बीच पारस्परिक संबंधों को दर्शाया जाता है।

(घ) नेतृत्व का अभ्यास संस्था के समान लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु किया जाता है।

(ङ) नेतृत्व एक निरंतरशील प्रक्रिया है।

'नेता' शब्द की उत्पत्ति नेतृत्व से हुई है। जिस व्यक्ति में नेतृत्व के गुण होते हैं, वह नेता कहलाता है। नेतृत्व के विषय में चर्चा करते समय यह महत्त्वपूर्ण है कि नेता और अनुयायी के मध्य संबंध को समझा जाए। किसी संगठन की सफलता का श्रेय बहुत-सी बार उसके नेता को दे दिया जाता है, लेकिन अनुयायियों को उपयुक्त श्रेय नहीं दिया जाता। बहुत-से अनुयायी संबंधी कारक; जैसे–उनके ज्ञान, कौशल, प्रतिबद्धता, सामूहिक मनोवृत्ति (टीम स्पिरिट), सहयोग करने की इच्छा इत्यादि व्यक्ति को एक प्रभावी नेता बनाते हैं। प्रायः ऐसा माना जाता है कि अनुयायी स्वीकृति के माध्यम से एक व्यक्ति को अच्छा नेता बनाते हैं। इस कारण यह सर्वमान्य है कि नेता व अनुयायी दोनों ही के द्वारा नेतृत्व प्रक्रिया में प्रमुख भूमिका निभाई जाती है।

प्रश्न 47. संचार प्रक्रिया में कौन-सा तत्त्व संदेश को शब्दों, प्रतीकों, हाव-भाव आदि में परिवर्तित करने में शामिल हैं? [NCERT]

अथवा

संप्रेषण प्रक्रिया में किन तत्त्वों का समावेश होता है? संक्षेप में उत्तर दीजिए।

उत्तर--- संप्रेषण प्रक्रिया के तत्त्व

संप्रेषण को एक प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया गया है जिसमें विविध तत्त्व; जैसे–स्रोत, कूट बनाना (एनकोडिंग), संचारण (डिकोडिंग), कोलाहल (Noise), माध्यम/प्राप्तकर्ता तथा प्रतिपुष्टि शामिल होते हैं। सम्प्रेषण प्रक्रिया में जिन तत्त्वों को शामिल किया जाता है, वे निम्नलिखित हैं---

(क) प्रेषक/संदेश भेजने वाला-प्रेषक का अर्थ उस व्यक्ति से है जो अपनी सूचनाएँ अथवा विचार प्राप्तकर्ता को भेजता है। संप्रेषण के स्रोत को प्रेषक ही दर्शाता है।

(ख) कूट/संदेश-ये वे विचार, भाव, आदेश, सुझाव व सूचनाएँ इत्यादि हैं जिन्हें प्रेषित किया जाता है।

(ग) एनकोडिंग-यह वह प्रक्रिया है जो संदेश को (जिसे भेजना है उसे) संप्रेषण के संकेतों में परिवर्तित करती है; जैसे-शब्द, ग्राफ, तस्वीरें, आरेख चित्र, क्रिया या व्यवहार इत्यादि।

(घ) माध्यम-ये वे साधन या माध्य हैं जिनके माध्यम से एनकोडिंग संदेश को प्राप्तकर्ता को भेजते हैं। यह माध्यम लिखित रूप में, दूरभाष, इंटरनेट, प्रत्यक्ष आमने-सामने, बातचीत इत्यादि द्वारा हो सकते हैं! ।

(ङ) डिकोडिंग-यह प्रेषक द्वारा भेजे गए एनकोडिड संदेश को समझने हेतु उसे परिवर्तित करने की प्रक्रिया है।

(च) संदेश प्राप्तकर्ता-यह वह व्यक्ति है, जो प्रेषक द्वारा भेजे गए संदेश/संप्रेषण को प्राप्त करता है।

(छ) प्रतिपुष्टि-इसमें वह सभी प्रक्रियाएँ शामिल हैं जो संदेश प्राप्तकर्ता यह संकेत देने के लिए करता है कि उसे संदेश प्राप्त हो गया है तथा उसने उस संदेश को उसी रूप में समझ लिया है।

(ज) ध्वनि/कोलाहल-ध्वनि से आशय प्रभावी संप्रेषण में कुछ बाधा अथवा रुकावट आने से है। यह बाधा प्रेषक के कारण अथवा संदेश या संदेश प्राप्त करने वाले के कारण भी हो सकती है। ध्वनि के अग्रलिखित उदाहरण हैं---

(क) एक दयनीय दूरभाषा संबंध।

(ख) अस्पष्ट संकेत, जिनके कारण एनकोडिंग में त्रुटि होती है।

(ग) एक लापरवाह/अन्यमनस्क संदेश प्राप्तकर्ता।

(घ) संदेश का गलत अर्थ निकालना (त्रुटिपूर्ण डिकोडिंग)।

(ङ) पक्षपात के कारण संदेश का गलत अर्थ निकलना।

(च) संकेत व विशेष मुद्रा, जो संदेश को विकृत कर देती है।

प्रश्न 48. औपचारिक संप्रेषण का अर्थ समझाइए।

उत्तर--- औपचारिक संप्रेषण

संस्था की संरचना में औपचारिक संप्रेषण' आधिकारिक माध्यमों द्वारा प्रवाहित होता है। संप्रेषण, अधीनस्थों व अधिकारियों तथा प्रबंधकों व कर्मचारियों के मध्य (जो समान स्तर पर हैं) संप्रेषण होता है। संप्रेषण लिखित अथवा मौखिक हो सकता है, लेकिन सामान्यतया कार्यालय रिकॉर्ड व दाखिल (फाइल) किए जाते हैं।

उसके बाद औपचारिक संप्रेषण का पुन: वर्गीकरण किया जा सकता है-ऊर्ध्वाधर व समतल। शीर्ष संप्रेषण का प्रवाह सीधी अथवा लंबवत् रेखा में होता है-ऊपर या नीचे आधारिक श्रृंखला में ऊपर की दिशा में । औपचारिक माध्यम के द्वारा संप्रेषण उस प्रवाह को प्रदर्शित करता है जो अधीनस्थों से अधिकारियों तक पहुँचता है, सम्प्रेषण नीचे की ओर अधिकारियों से अधीनस्थों की ओर प्रवाह को प्रदर्शित करता है। ऊपर की

ओर संप्रेषण के उदाहरण हैं-कार्य प्रगति-प्रतिवेदन/रिपोर्ट जमा करना, अवकाश की स्वीकृति हेतु प्रार्थना-पत्र, अनुदान हेतु निवेदन इत्यादि। इसी प्रकार नीचे की ओर संप्रेषण के उदाहरण में कर्मचारियों को संस्था में उपस्थित होने के लिए नोटिस भेजना, अधीनस्थों को सौंपे गए कार्य को पूरा करने हेतु आदेश देना, अधीनस्थों को उच्च प्रबंध द्वारा निर्मित निर्देशन/मार्गदर्शन को जारी करना इत्यादि शामिल हैं। समतल या पाश्वीय संप्रेषण एक विभाग से दूसरे विभाग के मध्य होता है। उदाहरण के लिए-एक उत्पादन प्रबंधक, विपणन (बाजार) प्रबंधक से सम्पर्क करके उत्पाद की सुपुर्दगी के बारे में समय व कार्यक्रम की रूपरेखा, उत्पाद की गुणवत्ता अथवा उसकी रूपरेखा आदि की चर्चा कर सकता है। इस पैटर्न/प्रतिरूप में इस तरह के संप्रेषण का प्रवाह संस्था के भीतर होता है, सामान्यतया यह 'संप्रेषण तंत्र' के द्वारा भी जाना जा सकता है। एक औपचारिक संगठन के अंतर्गत विविध प्रकार के संप्रेषण तंत्र काम कर सकते हैं। कुछ प्रचलित संप्रेषण तंत्रों को नीचे दिए गए चित्र में दर्शाया गया है तथा उनकी चर्चा निम्नलिखित---

(क) एकल श्रृंखला----- एक पर्यवेक्षक और उसके अधीनस्थ के बीच 'एकल श्रृंखला तंत्र' स्थापित होता है क्योंकि सांगठनिक संरचना में बहुत-से स्तर उपस्थित होते हैं तथा एकल श्रृंखला के द्वारा संप्रेषण का प्रवाह प्रत्येक पर्यवेक्षक से उसके अधीनस्थ की ओर होता है।

(ख) चक्र--- इस तंत्र के अंतर्गत सभी अधीनस्थ केवल एक अधिकारी के माध्यम से ही संप्रेषण करते हैं और वह अधिकारी द्वारा ही उस चक्र के केन्द्र के रूप में कार्य किया जाता है। वहीं अधीनस्थ को आपस में भी वार्तालाप करने की अनुमति नहीं होती है।

(ग) गोला---- इस तंत्र में संप्रेषण एक गोले में ही प्रसारित होता है तथा प्रत्येक व्यक्ति द्वारा केवल अपने साथ के दो व्यक्तियों के साथ ही संप्रेषण किया जाता है। गोला संप्रेषण तंत्र के अंतर्गत संप्रेषण का प्रवाह मंद गति का होता है।

(घ) स्वतंत्र/मुक्त प्रवाह-इस तंत्र में प्रत्येक व्यक्ति एक-दूसरे से स्वतंत्र तौर पर विचारों का आदान-प्रदान करने हेतु मुक्त है। इस प्रकार के तंत्र के अंतर्गत संप्रेषण का प्रवाह तीव्र गति से होता है।

(ङ) विलोम v— इस तंत्र के अंतर्गत एक अधीनस्थ को मात्र अपने एकदम ऊपर उच्चाधिकारी तथा उसके अधिकारी के साथ ही संप्रेषण करने की अनुमति होती है। इसके बावजूद बाद के केस में केवल निर्धारित संप्रेषण ही होता है।

प्रश्न 49. वित्तीय प्रबंधन तीन व्यापक वित्तीय निर्णयों पर आधारित हैं। ये क्या हैं? [NCERT]

उत्तर- वित्तीय प्रबन्धन तीन व्यापक वित्तीय निर्णयों पर आधारित होता है। ये वित्तीय निर्णय निम्नलिखित---

1. विनियोग या निवेश सम्बन्धी निर्णय–-- विनियोग या निवेश सम्बन्धी निर्णय वे निर्णय होते हैं जिनमें यह निश्चित किया जाता है कि साधनों को कहाँ पर विनियोजित किया जाए जिससे वे अपने निवेशकों को अधिक-से-अधिक लाभ प्राप्त करा सकें। इस प्रकार का निर्णय दो प्रकार का हो सकता है अल्पकालीन विनियोग निर्णय एवं दीर्घकालीन विनियोग निर्णय। अल्पकालीन विनियोग निर्णय वे होते हैं जो स्कन्ध, देनदार तथा रोकड़ के स्तर का निर्णय लेने से सम्बन्धित होते हैं। चूंकि ये सम्पत्तियाँ व्यवसाय के दैनिक लेन-देन से प्रभावित होती हैं, अत: ये व्यवसाय की देयता तथा लाभदायकता को भी प्रभावित करती हैं। अत: वित्त प्रबन्धक यह सुनिश्चित करता है कि इन सम्पत्तियों का पर्याप्त विनियोग हो। इसे 'कार्यशील पूँजी का प्रबन्ध' भी कहते हैं। दीर्घकालीन विनियोग निर्णय वे होते हैं जिनमें वित्त की वचनबद्धता दीर्घकालीन आधार पर निर्धारित होती है; जैसे–पुरानी मशीन के बदले में नई मशीन क्रय करना, किसी नई सम्पत्ति का अधिग्रहण करना या कोई नई शाखा खोलना इत्यादि। इस प्रकार के निर्णयों का सम्बन्ध दीर्घकालीन सम्पत्तियों में विनियोग से होता है, अत: ऐसे निर्णय किसी भी व्यवसाय हेतु बड़े विकराल होते हैं। इनसे दीर्घकाल में फर्म की लाभदायकता को प्रभावित किया जा सकता है, अतः ऐसे निर्णयों को लेते समय अत्यन्त सावधानी की आवश्यकता होती है। इसे पूँजी बजटिंग निर्णय' भी कहा जाता है।

2. वित्त व्यवस्था या वित्तीय सम्बन्धी निर्णय--- इस प्रकार के निर्णय से आशय यह सुनश्चित करना है कि संस्था हेतु आवश्यक वित्त को अनेक दीर्घकालीन स्रोतों से कितनी-कितनी मात्रा में प्राप्त किया

जाएगा। दीर्घकालीन वित्त स्रोतों में अंशधारी कोष (समता एवं पूर्वाधिकार अंश पूंजी), ऋण-पत्र दीर्घकालीन ऋण एवं संचित लाभ को शामिल किया जाता है। इस प्रकार के निर्णय लेने के लिए कम्पनी का विवेकसम्मत होना आवश्यक है ताकि ऋण एवं समता का अनुपात उचित बनाए रखा जा सके।

3. लाभांश से सम्बन्धित निर्णय–- इसके अन्तर्गत अंशधारियों को लाभांश वितरण से सम्बन्धित निर्णय लेना होता है अर्थात् यह निश्चित करना होता है कि अर्जित लाभ (कर का भुगतान करने के पश्चात) का कितना भाग अंशधारियों में लाभ के रूप में बाँटा जाए तथा कितना भाग फर्म में प्रतिधारित पर (संचित लाभ) के रूप में पनर्निियोजित किया जाए ताकि आवश्यकता के समय विनियोग सम्बन्धी आवश्यकता को पूरा किया जा सके।

प्रश्न 50. "पूँजीगत बजट निर्णय व्यवसाय के वित्तीय भाग्य को बदलने में सक्षम है। क्या आप सहमत हैं। अपने जवाब के लिए कारण दें। [NCERT]

उत्तर- यह कथन सत्य है कि पूँजी बजट निर्णय व्यवसाय के वित्तीय भाग्य को बदलने में सक्षम हैं इसके प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं--

1. लाभप्रदता को निर्धारित करना--- पूँजी बजट स्थायी सम्पत्तियों में विनियोग निर्णय से सम्बन्धित होते हैं। स्थायी सम्पत्तियाँ उत्पादन में सहायता करती है तथा उत्पादन को बेचकर लाभ प्राप्त किया जाता है। इससे लाभप्रदता का निर्धारण होता है।

2. लाभों के पूर्वानुमान पर आधारित---- पूँजी बजटिंग के अन्तर्गत अगले वर्षों के लाभों का पूर्वानुमान लगाते हैं। इसके लिए लागत और लाभों का अध्ययन करते हैं। यदि ये थोड़े से भी गलत हो जाएँ तो इससे संस्था को भारी हानि उठानी पड़ती है।

3. भारी विनियोगों से सम्बन्ध---- पूँजी बजटिंग के अन्तर्गत स्थायी सम्पत्तियों से सम्बन्धित निर्णय लिए जाते हैं। इन स्थायी सम्पत्तियों में बड़ी मात्रा में पूँजी का विनियोग किया जाता है। अत: निर्णयों के गलत होने पर भारी हानि होने की सम्भावना बनी रहती है।

4. परिवर्तन सरल नहीं--- सामान्यत: पूँजी बजटिंग सम्बन्धी निर्णय वापस नहीं लिए जाते। यदि स्थायी सम्पत्तियों में विनियोजन के पश्चात् यह ज्ञात हो जाए कि निर्णय सही नहीं लिया गया है तो निर्णय को बदलने में अधिक हानि की सम्भावना बनी रहती है।

प्रश्न 51. वित्तीय प्रबंधन के मुख्य उद्देश्य क्या हैं? संक्षेप में विवरण दें। [NCERT]

उत्तर- अंशधारियों की धनसंपदा में अधिकतम वृद्धि करना ही वित्तीय प्रबंध का मख्य उददेश्य होता है। किसी कंपनी के अंशों का बाजार मूल्य मुख्यत: तीन वित्तीय निर्णयों से संबंधित होता है। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि कंपनी के समस्त कोष अंशधारियों से संबंधित होते हैं। जिस विधि द्वारा उनका विनियोजन किया जाता है एवं जिस विधि द्वारा उनसे लाभ प्राप्त किया जाता है, के अनुसार ही उनकी कीमत निर्धारित होती है, जिसका सही अर्थ समता अंशों का बाजार मूल्य अधिक बढ़ाना होता है। समता अंशों का बाजार मल्य तभा बढ़ता है, जब घोषित लाभांश की राशि, लागत से अधिक होती है इसलिए समस्त विनीय निर्णयों का लक्ष्य इस कथन को प्रतिपादित करना होता है कि हर निर्णय कुशलतापूर्वक लिया गया था ली से अंशों के मूल्य में बढ़ोतरी हुई है एवं इस प्रकार की मूल्य वृद्धि से अंशों के बाजार मल्य में बदोलती की यदि निर्णय कमजोर है तो ही मूल्य में गिरावट आती है इसलिए हमारे वित्तीय प्रबंध का उददेश्य किसी कंपनी की क्षमता अंशों के वर्तमान मल्यों को अधिक-से-अधिक ऊंचाई पर ले जाना है। अतः अंशधारकों एवं स्वामियों के धन को बढ़ाना है।

जब किसी नवीनतम मशीन में हम विनियोजन का निर्णय लेते हैं तो इसका मुख्य उददेश्य, लागत से अधिक लाभ अजित करना होता है, जिसके कारण मल्यों में वृद्धि होती है। इसी प्रकार यदि वित्त उपार्जन होता है तो इसका उद्देश्य लागत को कम करना होता है ताकि मूल्य में वृद्धि अधिक हो। सभी वित्तीय निर्णयों में चाहे वे बड़े हों या छोटे, अंतिम उद्देश्य, निर्णयकर्ता का कुछ मूल्य में वृद्धि करने में मार्गदर्शक का कार्य करता है ताकि समता अंशों का बाजार मूल्य अधिक हो। ऐसा प्रायः कुशल निर्णय लेकर हा सभव हो सकता है। सही अर्थों में हम निर्णय लेने को तभी कशल कहेंगे जब कई उपलब्ध विकल्पों में से सबसे श्रेष्ठ का चुनाव किया गया हो।

प्रश्न 52. पूँजी संरचना की विवेचना कीजिए।

उत्तर--- पूँजी संरचना का आशय संस्था के पूँजीकरण में भिन्न-भिन्न स्रोतों का सापेक्षिक अनुपात तय करने से होता है। गर्टेनबर्ग के अनुसार, "जारी की जाने वाली प्रतिभूतियों के प्रकार तथा आनुपातिक धनराशि, जिनसे पूँजीकरण होता है; 'पूँजी ढाँचा' या 'वित्तीय ढाँचा' कहलाता है।

पूँजी संरचना

किसी भी वित्तीय प्रबंधन में वित्तीय प्रारूप का महत्त्वपर्ण योगदान होता है। व्यावसायिक वित्त के स्रोतों को स्वामित्व के आधार पर मुख्यत: दो वर्गों में बाँटा जाता है– 'ग्रहीत निधि' व 'स्वामिगत निधि'। ग्रहीत निधि के अन्तर्गत ऋणपत्र, ऋण तथा सार्वजनिक जमा आदि सम्मिलित होते हैं। स्वामिगत निधि में समता अंश, पूर्वाधिकार अंश तथा संचय एवं आधिक्य या प्रतिधारित उपार्जन सम्मिलित होते हैं। पूँजी संरचना से अर्थ स्वामिगत एवं ग्रहीत निधि के मिश्रण से है। इन्हें समता एवं ऋण के रूप में तदंतर पाठ में वर्णित किया जाएगा।

$$\text{ऋण समता अनुपात} = \frac{\text{ऋण}}{\text{समता}}$$

या कुल पूँजी में ऋण की मात्रा जैसे—

$$\frac{\text{ऋण}}{\text{ऋण} + \text{समता}}$$

किसी फर्म के नजरिए से देखें तो समता एवं ऋण दोनों की लागत एवं जोखिम में बहुत अंतर होता है। किसी भी फर्म में समता की तुलना में ऋण की लागत कम होती है क्योंकि किसी उधार देने वाले व्यक्ति का जोखिम अंशधारियों के जोखिम से कम होता है। किसी उधारदाता की आय की माँग निम्न दर की होती है। क्योंकि वे एक निश्चित राशि ब्याज के रूप में पाते हैं एवं एक नियत समय के बाद उन्हें अपनी निवेशित राशि का भुगतान भी प्राप्त हो जाता है। किसी लाभांश का भुगतान लाभ में से कर को घटाने के पश्चात् शेष लाभ में से किया जाता है। इसके अलावा ऋणों पर भुगतान किया गया ब्याज, कर के रूप में देनदारी में से कम किया जाता है। किसी ऋण के बढ़ते हुए उपयोग से यह संभावना होती है कि फर्म की पूंजी की कुल लागत कम हो जाए।

किसी भी व्यवसाय के लिए ऋण आसान होता है लेकिन यह बहुत जोखिमपूर्ण होता है, क्योंकि इसका भुगतान एक निश्चित समय पर व्यवसाय से ही करना पड़ता है। इन प्रतिद्वंद्विताओं को यदि समय पर पूरा नहीं किया जाता तो कभी-कभी व्यवसाय दिवालिया भी हो सकता है, लेकिन समता की दशा में ऐसा जोखिम कभी नहीं होता है। ऋणों के बढ़ते हुए उपयोग से व्यवसाय के वित्तीय जोखिम में वृद्धि होती है। किसी भी व्यवसाय की पूँजी संरचना वित्तीय जोखिम एवं लाभदायकता दोनों को प्रभावित करती है। पूँजी संरचना को हम उत्तम तब कह सकते हैं जब पूँजी संरचना से संबंधित सभी निर्णय इस प्रकार हों कि जिससे अंशधारियों की पूँजी में बढ़ोतरी हो।

किसी ऋण का समस्त पूँजी से अनुपात वित्तीय उत्तोलक के नाम से जाना जाता है।

वित्तीय उत्तोलक = $\frac{\text{ऋण}}{\text{समता}}$ या $\frac{\text{ऋण}}{\text{ऋण}+\text{समता}}$

उपर्युक्त सूत्र में ऋण से अर्थ बाहा ऋणगत पँजी और समता से अर्थ अंशधारिया द्वारा लगाई गई पूंजी से है। लेकिन यदि वित्तीय उत्तोलक का मान बढ़ता है तो निधि की लागत का मान भी घटता है, इसका कारण यह है कि सस्ते ऋणों का उपयोग अधिक होता है। किसी वित्तीय उत्तोलक का किसी व्यवसाय की लाभदायकता पर प्रभाव ई०बी०आई०टी०-----ई०पी०एस० निम्न उदाहरण की सहायता से समझा जा सकता है। किसी एक्स कंपनी के सम्बन्ध में लापरवाही से समता पर व्यापार की अनुशंसा नहीं की जा सकती है। ऋण के मान में वृद्धि ई०पी०एस० को बढ़ा सकती है, लेकिन जैसा पूर्व में ही बतलाया गया है इसके जोखिम में वृद्धि हो जाती है। एक कंपनी को इस प्रकार के जोखिम प्रतिफल सम्मिश्रण का चनाव, चाहिए ताकि अंशधारियों को संपदा में अधिक-से-अधिक वृद्धि प्राप्त हो सके।

प्रश्न 53. पूँजी बजटिंग निर्णय से आपका क्या अभिप्राय है? यह महत्त्वपूर्ण क्यों माना जाता है? उल्लेख कीजिये

उत्तर- दीर्घकालीन संपत्तियों में निवेश स्थायी पूँजी को दर्शाता है। इस पूँजी व्यवस्था में फर्म की पूंजी का कई पारयाजनाओं में वितरण किया जाता है। ऐसे निर्णयों को निवेश निर्णय या पूँजी बजटिंग निर्णय से जाना जाता है। ऐसी दीर्घकालीन संपत्तियाँ मुख्यतः एक वर्ष से अधिक समय के लिए होती हैं। स्थायी संपत्तियों का वित्त प्रबंधन अल्पकालीन स्रोतों से नहीं किया जाना चाहिए। ऐसी संपत्तियों के लि व्यवस्था भी पूंजी के दीर्घकालीन स्रोतों; जैसे-समता, ऋणपत्र, दीर्घकालीन ऋण एवं व्यवसायी प्रतिधारित उपार्जन से की जानी चाहिए। ऐसी संपत्तियों में लगाया गया निवेश, विस्तार पर किया गया व्यय, क्रय पर किया गया व्यय, आधनिकीकरण तथा उनके प्रतिस्थापन पर किए गए व्यय आदि भी शामिल हैं। पूँजी बजटिंग निर्णयों के अन्तर्गत खोज या अनुसंधान, विज्ञापन अभियान, विकास कार्यक्रम आदि शामिल हैं। पूँजी बजटिंग निर्णय निम्नलिखित कारणों से महत्त्वपूर्ण हैं–

(i) दीर्घकालीन विकास तथा प्रभाव--- इस प्रकार के निर्णय दीर्घकालीन विकास के लिए किए जाते हैं। निधि के दीर्घकालीन संपत्तियों में निवेश से भविष्य में आमदनी होती है, इसी उम्मीद से इसमें निवेश किया जाता है। ये व्यवसाय भविष्य की प्रत्याशाओं एवं संभावनाओं को प्रभावित करती हैं। ।

(ii) इनमें निधि की बड़ी मात्रा आलिप्त होती है–– इन निर्णयों को लेने से पहले, इनका विस्तृत विश्लेषण कर लेने के बाद ही कार्यक्रम नियोजित किए जाते हैं। ऐसे निर्णयों में यह ध्यान रखना चाहिए कि निधि को कहाँ से किस ब्याज दर पर लिया जाए। ऐसी सावधानियाँ न रखने पर पूँजी कोष का एक बड़ा भारी भाग ऐसी दीर्घकालीन परियोजनाओं में निवेश करने से अविचल हो जाता है, या पूँजी स्थिर हो जाती है।

(iii) जोखिम का आलिप्त होना--- किसी भी स्थायी पूंजी में निवेश की बड़ी मात्रा आलिप्त होती है जिसका किसी फर्म की आय (संपूर्ण आय) पर दीर्घकालीन प्रभाव होता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि किसी स्थायी पूँजी आलिप्त निवेश निर्णय, फर्म के संपूर्ण व्यावसायिक जोखिमों को प्रभावित करती है। .

(iv) अनत्क्रमणीय निर्णय–-- किसी भी परियोजना पर भारी निवेश के बाद समाप्त या बंद करने का है कि कोषों का अपव्यय होना एवं साथ ही किसी बड़ी परियोजना का विफल होना इसलिए निर्णयों को सावधानीपूर्वक एवं उचित मूल्यांकन करने के बाद ही लेना चाहिए।

प्रश्न 54. ब्याज आवरण अनुपात (आई०सी०आर०) तथा ऋण सेवा अनुपात (डी०एस०सी०आर) की गणना किस प्रकार की जाती है?

उत्तर- ब्याज आवरण अनुपात (आई०सी०आर०)--- इसका अभिप्राय उस संख्या से है–जितनी बार बयाज और कर से पहले की कंपनियों की आय ब्याज भूगतान को पूरा करती है। इसकी गणना अग्र प्रकार से की जाती है

$$\text{ब्याज आवरण अनुपात (ICR)} = \frac{\text{ब्याज और कर से पहले आय}}{\text{ब्याज}}$$

यह अनुपात जितना अधिक होता है कंपनी ब्याज का भूगतान आसानी से करने में सामर्थ्यवान समझी जाती है, जबकि कम अनुपात का अर्थ है कम उधार कोष प्रतिभूतियाँ।

ऋण सेवा आवरण अनपात (डी०एस०सी०आर०)---- ब्याज आवरण अनुपात (आई०सी०आर०) म जो कमियाँ होती हैं, ऋण सेवा आवरण अनुपात उन कमियों पर ध्यान देता है। .

$$\text{ऋण सेवा आवरण अनुपात} = \frac{\text{कर के बाद लाभ} + \text{ह्रास} + \text{ब्याज} + \text{गैर नगद व्यय}}{\text{पूर्वाधिकार लाभांश} + \text{ब्याज} + \text{पुनर्भुगतान कर्तव्य}}$$

यदि डी०एस०सी०आर० उच्च होता है तब कंपनी पूँजी ढाँचे में अधिक ऋण रख सकती है क्योंकि उच्च DSCR कंपनी के ऋण का भुगतान करने के लिए उसकी योग्यता को प्रदर्शित करता है परन्तु यदि DSCR कम है तब कंपनी को ऋण को टालना चाहिए और केवल समता पूँजी पर निर्भर करना चाहिए।

प्रश्न 55. वित्तीय बाजार की संकल्पना को स्पष्ट कीजिए।

उत्तर- वित्तीय बाजार की संकल्पना (अवधारणा)---- कोई भी व्यवसाय एक अर्थव्यवस्था का महत्त्वपूर्ण भाग होता है, जिसमें मुख्यतः दो क्षेत्र सम्मिलित होते हैं। पहला तो घरेलू जोकि निधियों को बचाता है तथा दूसरा व्यावसायिक फर्मे जोकि इन निधियों को निवेशित करती हैं। एक वित्तीय बाजार इन दोनों ही के मध्य निधियों का संचालन करके बचतकर्ता एवं निवेशक को जोड़ने में सहायता प्रदान करता है। यह कार्य करते हुए यह जो कुछ भी निष्पादित करता है, उसे एक विनियोजित व्यवसाय अथवा कार्य कहते हैं। यह निवशको के लिए उपलब्ध निधियों को उनके सर्वाधिक उत्पादक निवेश अवसर में विनियोजित करता है। जब विनियोजन का यह कार्य सर्वोत्तम प्रकार से पूर्ण हो जाता है, तो निम्नलिखित दोपरि होते हैं---

1. घरों (हाउसहोल्ड) के लिए प्रस्तावित वापसी दरें बहुत उच्च होती हैं।

2. उन व्यावसायिक फर्मों के लिए दुर्लभ संसाधनों का विनियोग किया जाता है जोकि अर्थव्यवस्था के लिए उच्च उत्पादकता प्रदान करती हैं।

निधि का विानयोजन बैंक के द्वारा अथवा वित्तीय बाजार के द्वारा किए जाने के लिए मुख्यत: दो प्रकार की वैकल्पित प्रक्रियाएं हैं। पहली प्रक्रिया के अन्तर्गत घर (हाउसहोल्ड) अपनी अधिशेष निधियों को बैंक में जमा करा सकते है जोकि निधियो को ऋण के रूप में व्यावसायिक फर्मों को दे सकते हैं। दूसरी प्रक्रिया के अन्तर्गत वे वित्तीय बाजार का उपयोग करने वाली किसी व्यावसायिक फर्म द्वारा प्रस्तावित शेयर एवं ऋण-पत्र डिबेंचर्स खरीद सकते हैं।

वह प्रक्रिया जिसके द्वारा निधियों का विनियोजन किया जाता है, 'वित्तीय मध्यस्थता' कहलाती है। बैंक तथा वित्तीय बाजार, वित्तीय व्यवस्था में मध्यस्थ को (मिडियेटर) से प्रतिस्पर्धा करते हैं तथा घर (हाउसहोल्ड) को अपनी बचत राशि का निवेश करने हेतु विकल्प प्रदान करते हैं। इस प्रकार, हम कह सकते हैं कि वित्तीय बाजार वह है, जो वित्तीय परिसंपत्तियों के विनिमय व सृजन के लिए एक बाजार बनाता है। वित्तीय बाजार उसी स्थान पर अस्तित्व में आता है जहाँ पर कोई वित्तीय लेन-देन होता है। ये वित्तीय लेन-देन किसी भी वित्तीय परिसंपत्ति की रचना के रूप में हो सकते हैं; जैसे-किसी व्यावसायिक फर्म द्वारा शेयर अथवा ऋण-पत्रों (डिबेंचर्स) का आरंभिक निर्गमन या विद्यमान वित्तीय परिसंपत्तियों (इक्विटी शेयरों, ऋण-पत्रों एवं बंध-पत्रों) का क्रय-विक्रय करना आदि।

प्रश्न 56. वित्तीय बाजार के प्रकार्य क्या हैं? [NCERT]

उत्तर- वित्तीय बाजार के प्रकार्य--- हम पढ़ चुके हैं कि वित्तीय बाजार एक अर्थव्यवस्था में दुर्लभ संसाधनों का विनियोजन करने में बहुत ही महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इस कार्य को पूर्ण करने के लिए वे प्राय: निम्नलिखित चार महत्त्वपूर्ण प्रकार्यों को निष्पादित करते हैं--

1. बचतों को गतिशील बनाना तथा उन्हें अधिकाधिक उत्पादक उपयोग में सरणित करना---- वित्त बाजार बचतकर्ताओं द्वारा बचाई गयी बचतों को निवेशकों सुविधाजनक बनाते हैं। ये बचतकर्ताओं को विभिन्न निवेशकों में से किसी एक को चुनने का विकल्प देते हैं। इस प्रकार, ये अधिशेष निधियों को सर्वोच्च उत्पादक उपयोग में सरणित करने में सहायता प्रदान करते हैं।

2. मूल्य खोज को सुसाध्य बनाना--- जिस प्रकार बाजार में किसी वस्तु या सेवा का मूल्य निर्धारित करने के लिए उनकी माँग एवं आपूर्ति सहायक होती है; ठीक उसी प्रकार वित्त बाजार में भी घरों (हाउसहोल्ड) की निधियों के आपूर्तिकर्ता एवं व्यावसायिक फर्मे माँग का प्रतिनिधित्व करती हैं। इन दोनों के मध्य होने वाली परस्पर क्रिया ही उस वित्तीय परिसंपत्ति का मूल्य निर्धारित करने में सहायक होती है जिसका उस विशेष बाजार में व्यापार किया जाना होता है।

3. वित्तीय परिसंपत्तियों हेतु द्रवता उपलब्ध कराना---- वित्तीय बाजार किसी वित्तीय परिसंपत्ति को सुविधापूर्वक बेचने व खरीदने की प्रक्रिया को सुगम बनाते हैं। इस प्रकार वे वित्तीय परिसंपत्तियों को द्रवता प्रदान करते हैं जिससे कि उन्हें आवश्यकतानुसार सुगमतापूर्वक रोकड़ (नकद) में परिवर्तित किया जा सके। ऐसा करके वित्तीय परिसंपत्तियों के धारक वित्तीय बाजार की प्रक्रिया द्वारा अपनी वित्तीय परिसंपत्ति को जब चाहें तब तुरंत ही बेच सकते हैं।

4. लेन-देन की लागत को घटाना---- वित्तीय बाजार व्यापार की जाने वाली प्रतिभूतियों के विषय में अनेक सूचनाएँ उपलब्ध कराते हैं। ऐसा करके वे किसी वित्तीय परिसंपत्ति के क्रेता एवं विक्रेता दोनों के ही समय, प्रयास, धन इत्यादि को बचाते हैं। अत: हम कह सकते हैं कि वित्तीय बाजार वह साझा मंच है जहाँ पर क्रेता एवं विक्रेता दोनों ही एक साथ अपनी व्यक्तिगत आवश्यकताओं को पूरा कर सकते हैं।

प्रश्न 57. पूँजी बाजार और मनी मार्केट के बीच अन्तर स्पष्ट करें। [NCERT]

अथवा

पूँजी बाजार तथा मुद्रा बाजार में क्या भिन्नता पायी जाती है? स्पष्ट कीजिए।

उत्तर- पूँजी बाजार तथा मुद्रा बाजार में अंतर--- पूँजी बाजार एवं मुद्रा बाजार में प्रमुख अंतर निम्नवत् हैं---

1. भाग लेने वाले---- पूँजी बाजार में मुख्यतः वित्तीय संस्थान, बैंक, निर्गमित इकाइयाँ, विदेशी निवेशक एवं जनता में से साधारण फुटकर विनियोजक भाग लेते हैं जबकि मुद्रा बाजार में मुख्यतः रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया, वित्तीय संस्थान एवं वित्त कम्पनियाँ भाग लेती हैं। हालांकि व्यक्ति भी निजी तोर पर द्वितीयक बाजार के अन्तर्गत लेन-देन कर सकते हैं परन्तु सामान्यत: वे ऐसा नहीं करते है।

2. प्रलेखा--- पूंजी बाजार में मुख्यत: दीर्घकालिक निधि ऋण एवं इक्विटी प्रलेखों द्वारा लेन-देन किया जाता है जबकि मुद्रा बाजार में मुख्यतः लघुकालिक ऋण प्रपत्रों; जैसे-ट्रेजरी बिल, वाणिज्यिक बिल, जमा प्रमाण-पत्र इत्यादि द्वारा लेन-देन किया जाता है।

3. निवेश राशि--- पूंजी बाजार में प्रतिभतियों में निवेश करने के लिए बहुत अधिक मात्रा में वित का होना आवश्यक नहीं है। क्योंकि प्रतिभूतियों की इकाइयों का मुल्य प्रायः कम होता है; जैसे-₹10 या फिर ₹ 100. ठीक इसी प्रकार शेयरों के लेन-देन के लिए भी न्यनतम राशि को छोटा रखा जाता है जोकि ₹50 अथवा₹100 हो सकती है। इससे नियोक्ता अपनी छोटी-छोटी बचतों से इन प्रतिभूतियों को आसानी से खरीद सकते हैं। इसके विपरीत मुद्रा बाजार में खरीद-फरोख्त के लिए बहुत बड़ी मात्रा में वित्त की आवश्यकता होती है।

4. अवधि--- पूंजी बाजार में दीर्घावधि एवं मध्यावधि की प्रतिभूतियों के लेन-देन होते हैं; जैसे- समता अंश एवं ऋण-पत्र। जबकि मुद्रा बाजार में लघु अवधि के प्रपत्रों के लेन-देन होते हैं (एक दिन से लेकर अधिकतम एक वर्ष के लिए)।

5. तरलता---- पूँजी बाजार के अन्तर्गत आने वाली प्रतिभूतियों को एक तरल निवेश माना जाता है क्योकि

इसका क्रय-विक्रय स्टॉक एक्सचेंज में किया जा सकता है। यद्यपि कभी-कभी ऐसा हो सकता है कि किसी शेयर का व्यापार सक्रिय रूप से न हो रहा हो अर्थात् उसका कोई क्रेता न हो। इसके विपरीत मुद्रा बाजार के अन्तर्गत आने वाले प्रपत्र अधिक तरल होते हैं क्योंकि इसके लिए अनेक औपचारिक व्यवस्थाएँ की गई होती हैं। डिस्काउण्ट एण्ड फाइनेन्स हाउस ऑफ इण्डिया (डी०एफ०एच०आई०) की स्थापना करने का प्रमुख उद्देश्य ही मुद्रा बाजार के प्रपत्रों के लिए तैयार बाजार प्रदान करना है।

6. सुरक्षा--- पूँजी बाजार में प्रतिभूतियों के मूल्य की वापसी एवं उन पर प्राप्त होने वाले प्रतिफल दोनों का

जोखिम रहता है। क्योंकि हो सकता है कि निर्गम करने वाली फर्म घोषित योजना के अनुसार कार्य न कर सके तथा प्रवर्तक निर्देशकों के साथ धोखा कर दे। इसके विपरीत मुद्रा बाजार अधिक सुरक्षित होते हैं क्योंकि इसमें गड़बड़ी की संभावना न्यूनतम होती है। इसका कारण निवेश की छोटी अवधि तथा नर्गमनकर्ताओं की सुदृढ़ वित्तीय स्थिति का होना है। सरकार, बैंक एवं उच्च श्रेणी की कम्पनियाँ मुद्रा

बाजार की प्रमुख निर्गमनकर्ता हैं।

7. संभावित प्रतिफल---- पूँजी बाजार में विनियोजित की गई राशि पर नियोजकों को मुद्रा बाजार की तुलना में बहुत अधिक ऊँची दर पर प्रतिफल मिलता है। यदि पूँजी बाजार की प्रतिभूतियाँ लम्बी समयावधि की होंगी तो उनसे प्राप्त होने वाली आय की संभावना भी अधिक होती है। प्रथम तो समता अंशों पर पूँजीगत लाभ की संभावना होती है तथा दूसरे लम्बी अवधि के दौरान कंपनी की समद्धि में उच्च लाभांश एवं प्रतिफल निर्गम रूप से शेयरधारकों की भी भागीदारी होती है।

प्रश्न 58. शेयर बाजार के कार्यों का वर्णन कीजिए।

उत्तर- स्टॉक एक्सचेंज (शेयर-बाजार) के कार्य-स्टॉक एक्सचेंज के प्रमुख कार्य निम्नलिखित है--

1. विद्यमान प्रतिभूतियों को द्रवता एवं विनियोग उपलब्ध कराना--- किसी भी शेयर बाजार का मूलभूत कार्य एक सतत् बाजार तैयार करना है जहाँ पर प्रतिभूतियों का क्रय-विक्रय किया जा सके

यह निवेशकों को विनिवेश एवं पुनर्निवेश के अवसर प्रदान करता है। साथ-ही-साथ यह बाजार में पहले से उपलब्ध विद्यमान प्रतिभूतियों को द्रवता एवं सरलतापूर्वक विनियोजन या नियोजन दोनों ही उपलब्ध कराता है।

2. प्रतिभतियों का मल्यन/भाव--- किसी भी शेयर बाजार में शेयर का भाव (या मल्य) उसकी मांग एवं आपूर्ति के आधार पर तय किया जाता है। शेयर बाजार सतत् मूल्यन (या मूल्य-निर्धारण) की एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा प्रतिभूतियों के मूल्य निर्धारित किए जाते हैं। इस प्रकार का मूल्यन क्रेता एवं विक्रेता दोनों को ही शीघ्रतापूर्वक सभी महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ प्रदान करता है।

3. लेन-देन की सुरक्षा--- किसी भी शेयर बाजार की सदस्यता एक बहुत-ही कुशल विधि द्वारा नियन्त्रित की जाती है। इस बाजार के कार्य-व्यापार को विशेष कानूनों द्वारा सुस्पष्ट किया गया है। यह सुनिश्चित कराता है कि निवेशकों को शेयर बाजार में सुरक्षित एवं निष्पक्ष लेन-देन प्राप्त हो।

4. आर्थिक प्रगति हेतु भागीदारी--- हम जानते हैं कि शेयर बाजार के अन्तर्गत विद्यमान प्रतिभूतियों का क्रय-विक्रय किया जाता है। यद्यपि विनिवेशन एवं पुनर्निवेशन की इस प्रक्रिया के अन्तर्गत बचतों को सर्वाधिक उत्पादक निवेश माध्यमों में निवेशित किया जाता है। यही पूंजी गठन एवं आर्थिक प्रगति को अग्रसर करता है।

5. इक्विटी अंतराल का प्रकार---- शेयर बाजार नए निर्गमों को विनियमित करके, कुशल व्यापार-व्यवहारों का निर्माण करके, जनता को निवेश के विषय में जागरूक करके आदि उपायों द्वारा विस्तृत शेयर स्वामित्व को सुनिश्चित करने में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

6. सट्टेबाजी के लिए अवसर उपलब्ध कराना---- शेयर बाजार कुछ कानूनी प्रावधानों के अन्तर्गत प्रतिबन्धित एवं नियन्त्रित तरीकों से सह-सम्बन्धी क्रियाकलापों के लिए पर्याप्त अवसर उपलब्ध कराता है। प्राय: यह माना जाता है कि एक निश्चित सीमा तक स्वस्थ सट्टेबाजी आवश्यक है जोकि शेयर बाजार की द्रवता एवं मूल्यन को सुनिश्चित करती है।

प्रश्न 59. डीमैट प्रणाली की कार्यविधि का संक्षेप में वर्णन कीजिए।

उत्तर- डीमैट प्रणाली की कार्यविधि---- डीमैट प्रणाली की कार्यविधि के अन्तर्गत निम्नलिखित चरण आते हैं---

1. सर्वप्रथम एक निक्षेपागार प्रतिभागी (डी०पी०), जोकि एक बैंक, दलाल या वित्तीय सेवा प्रदाता कम्पनी हो सकती है, की पहचान करनी चाहिए।

2. इसके पश्चात् एक खाता खोलने का कार्य लेकर प्रलेखन (डोक्यूमैन्टेशन) का सारा कार्य पूरा करना चाहिए।

3. अब डी०पी० को भौतिक प्रमाण-पत्रों के साथ विभौतिकीयकरण अनुरोध फार्म जमा करना चाहिए।

4. यदि अंशों को सार्वजनिक प्रस्ताव के रूप में आवेदित किया जाता है तो डीपी एवं डीमैट खाते का सरल विवरण दिया जाना होता है और अंशों का आबंटन स्वतः ही डीमैट खाते में जमा हो जाता है।

5. यदि अंशों को किसी दलाल के माध्यम से बेचा जाता है तो डी०पी० के खाते में डेबिट किए जाने वाले अंशों की संख्या के विषय में अनुदेशित करना होता है।

6. शेयर बाजार को अंशों की सुपुर्दगी करने के लिए दलाल अपने डी०पी० कों अनुदेशित करता है।

7. इसके पश्चात् दलाल भुगतान प्राप्त करके अंश वेचने वाले व्यक्ति को भुगतान करता है।

8. उपर्युक्त सभी लेन-देन 2 दिन में पूरे होते हैं अर्थात् अंशों को सुपुर्दगी तथा नेता से भुगतान T+2 प्राप्ति

की निपटान अवधि के आधार पर किया जाता है।

प्रश्न 60. बी०एस०ई०लि० के प्रमुख उद्देश्यों की स्पष्ट व्याख्या कीजिए।

उत्तर- बी०एस०ई०लि. के प्रमुख उद्देश्य निम्नवत् हैं–

1. समताओं, ऋणपत्रों, व्युत्पन्नों तथा म्युचुअल फंडों में व्यापार करने हेतु एक कुशल एवं पारदर्शी बाजार उपलब्ध कराना।।

2. लघु एवं मध्यम उपक्रमों की समताओं हेतु एक कुशल एवं पारदर्शी व्यापार मंच उपलब्ध कराना।

3. इलेक्ट्रॉनिक रूप से चालित एक्सचेंज के माध्यम से सक्रिय व्यापार तथा सुरक्षित बाजार उपलब्ध कराना।

4. पूंजी बाजार के प्रतिभागियों को अन्य सेवाएँ; जैसे-जोखिम प्रबंधन, समाशोधन, निपटान, बाजार 'आँकड़े, शिक्षा आदि उपलब्ध कराना।

5. शेयर बाजार को अन्तर्राष्ट्रीय मानकों के समानुरूप बनाना।

आज बा०एस०३०ल० का राष्ट्रीय उपस्थिति के साथ-साथ परे विश्व के ग्राहकों तक वैश्विक पहंच है। यह सभी प्रकार के बाजार क्षेत्रों में नवप्रवर्तन एवं प्रतिस्पर्धा को बढ़ाता है। इसने बी०एस०ई०

इंस्टीट्यूट लिमिटड नामक एक पूजी बाजार संस्थान की भी स्थापना की है जहाँ पर शेयर बाजार के दलालों के पास रोजगार वाले लोगों को वित्तीय बाजार एवं व्यावसायिक प्रशिक्षण पर शिक्षा उपलब्ध कराया जाता है। इस पर कासार में परे देश से तथा विदेशों से भी लगभग 5000 कम्पनियाँ सचीबद्ध हैं तथा इसका पूजाकरण बाणार भारत में सर्वाधिक है।

प्रश्न 61. सेबी के उद्देश्य क्या हैं? [NCERT]

अथवा

सेबी की भूमिका एवं उद्देश्य की विवेचना कीजिए।

उत्तर- सेबी की भूमिका एवं उद्देश्य--- सेबी का मूल उद्देश्य एक ऐसे पर्यावरण का निर्माण करना है जोकि शेयर बाजारों के माध्यम से संसाधनों को नियोजित करे एवं उनकी गतिशीलता को सुसाध्य बनाए। साथ-ही-साथ इसका एक अन्य उद्देश्य प्रतिस्पर्धा को उत्प्रेरित करना एवं नवाचारों को प्रोत्साहित करना है। इस पर्यावरण के अन्तर्गत नियम एवं विनियम, संस्थान एवं उनके अन्तर्सम्बन्ध, प्रपत्र, व्यवहार, बाह्य संरचना, नीतिगत ढाँचा इत्यादि सम्मिलित किए जाते हैं। इस पर्यावरण के कुछ प्रमुख उद्देश्य निम्नवत् हैं---

1 इस पर्यावरण का प्रमुख उद्देश्य उन तीन समूहों की आवश्यकताओं को पूरा करना है जोकि मुख्यत: बाजार का गठन करते हैं अर्थात् प्रतिभूतियों के निर्गमनकर्ता, निवेशक तथा बाजार मध्यस्थ (दलाल)।.

2. प्रतिभूतियों के निर्गमनकर्ता हेतु, इसका मुख्य उद्देश्य एक ऐसा बाजार उपलब्ध कराना है जहाँ से वे अपनी आवश्यकतानुसार आसानी से बिना किसी भेदभाव के वित्त (पूँजी) की उगाही कर सकें।

3. निवेशकों हेतु इसका मुख्य उद्देश्य उनके अधिकारों एवं हितों को औचित्यपूर्ण, परिपूर्ण, अधिकृत तथा निरन्तरता के आधार पर सूचनाएँ प्रदान करके संरक्षित करना है।

4. मध्यस्थों हेतु इसका मुख्य उद्देश्य यह है कि इन लोगों को चाहिए कि ये पर्याप्त एवं सक्षम बाह्य संरचना वाले प्रतियोगितात्मक, व्यावसायिकतापूर्ण एवं व्यापक बाजार को प्रस्तावित करें जिससे कि वे निवेशकों एवं निर्गमकों को सर्वोत्तम सेवाएँ उपलब्ध करा सकें।

उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट होता है कि सेबी का प्रमुख उद्देश्य निवेशकों के हितों को संरक्षित करना, उनके विकास को प्रोत्साहित करना तथा शेयर बाजार को विनियमित करना है। इन उद्देश्यों को निम्नवत् स्पष्ट किया जा सकता है--

1. शेयर बाजार तथा प्रतिभूतियों के व्यापार को विनियमित करना जिससे कि उनकी क्रियाशीलता को क्रमबद्ध तरीके से बढ़ावा मिल सके।

2. निवेशकों के अधिकारों एवं हितों की रक्षा करना तथा उन्हें मार्गदर्शित एवं शिक्षित करना (विशेषकर वैयक्तिक निवेशकों को)।

3. शेयर बाजार में पनपे आपराधिक कृत्यों को रोकना तथा शेयर बाजार के स्वनियमन एवं इसके वैधानिक विनियमन के मध्य एक सन्तुलन बनाना।

4. मध्यस्थों जैसे-दलाल. मर्चेट बैंकर्स आदि को प्रतियोगी एवं व्यावसायिक बनाने आचार-संहिता एवं निष्पक्ष व्यवहार को विकसित एवं विनियमित करना।

प्रश्न 62. सेबी के संगठनात्मक ढाँचे का वर्णन कीजिए।

उत्तर- सेबी का संगठनात्मक ढाँचा-सेबी एक वैधानिक संस्था है इसलिए इसके कार्य का क्षेत्र एवं विस्तार बहत विस्तत है। सेबी के प्रत्येक क्रियाकलाप को बहुत अधिक सावधानी, निकटता सा सधन ध्यान की आवश्यकता होती है जिससे यह अपने उद्देश्यों को पाने में सफल हो जाए। यही का कि सबी को पनर्गठित करके इसके विस्तार क्षेत्र के अनुसार तालमेल बेंठाने हेतु तर्कसंगत बनाया समान अपने कार्यों को पाँच कार्यात्मक प्रभावों में विभाजित करने का निर्णय लिया है। प्रत्येक प्रभाव की अगुवाइ एक कार्यकारी निदेशक करता है। इसका मुख्यालय मुम्बई में हैं तथा क्षेत्रीय कार्यालय कोलकाता,चेन्नई एवं दिल्ली में हैं। इन कार्यालयों से सम्बद्ध क्षेत्र के निर्गमनकर्ताओं, मध्यस्थों तथा शेयर बाजार के साथ-साथ निवेशकों की शिकायतों को सुलझाया जाता है।

इन कार्यालयों के साथ ही सेबी ने दो सलाहकार समितियाँ भी गठित की हैं-प्राथमिक बाजार सलाहकार समिति तथा द्वितीयक बाजार सलाहकार समिति। इन समितियों में बाजार के व्यापारी तथा सेबी द्वारा मान्यता प्राप्त निवेशक, संगठन एवं पूँजी बाजार की नामी-गिरामी हस्तियाँ सम्मिलित हैं। ये समितियाँ सेबी की नीतियों हेतु महत्वपूर्ण सुझाव देती हैं। इन दोनों समितियों के प्रमुख उद्देश्य निम्नवत् हैं---

1. प्राथमिक बाजार में किए गए निवेशों के हितों की रक्षा सुनिश्चित करने हेतु मध्यस्थों के विनियमन से

सम्बन्धित मामलों पर सलाह देना।

2. भारत में प्राथमिक बाजार के विकास से सम्बन्धित मुद्दों पर सेबी को सलाह देना।

3. कम्पनियों के लिए अपेक्षित प्रकरण पर सेबी को सलाह देना।

4. प्राथमिक बाजार में सरलीकरण एवं पारदर्शिता लाने के लिए कानूनी ढाँचे में परिवर्तन करने हेतु सलाह देना।

5. देश में द्वितीयक बाजारों के विनियमन एवं विकास से सम्बन्धित मामलों हेतु सेबी को सलाह देना। यद्यपि इन समितियों की प्रकृति गैर-वैधानिक है तथा सेबी इनकी सलाहों को मानने के लिए बाध्य नहीं है। ये समितियाँ सेबी के उन क्रमबद्ध प्रयासों का हिस्सा हैं जिन्हें पूरा करने हेतु बाजार के विकास एवं विनिमय से जुड़े मुद्दों पर विभिन्न बाजार के निवेशकों से एक प्रतिप्रेषण (फीडबैक) प्राप्त होता है।

प्रश्न 63. उपभोक्ता के दायित्व क्या हैं? [NCERT]

उत्तर--- उपभोक्ता के दायित्व

उपभोक्ता के हितों की सुरक्षा के लिए सरकारी और गैर-सरकारी संगठनों द्वारा कई प्रयास किए गए हैं परंतु उपभोक्ता का शोषण केवल तभी बंद होगा जब उपभोक्ता स्वयं अपने हित की सुरक्षा के लिए आगे आएंगे। उपभोक्ताओं को कुछ दायित्व निर्वाह करने पड़ते हैं जो नीचे दिए गए हैं----

(i) बाजार में उपलब्ध वस्तुओं तथा सेवाओं के संबंध में पूर्ण जानकारी रखें ताकि वस्तुओं का चुनाव आसानी से किया जा सके।

(ii) मानक वस्तुओं पर विश्वास करें क्योंकि इनकी गुणवत्ता अच्छी होती है। आभूषणों पर (Hallmark)

हॉलमार्क, खाद्य उत्पादों पर (FPO), बिजली के सामान पर (ISI), ऊन के उत्पादों पर WOOLMARK एवं

वातावरण के अनुकूल उत्पादों पर ECOMARK अवश्य देखें।

(iii) किसी भी वस्तु को खरीदने पर नकद प्राप्ति रसीद माँगे।

(iv) वस्तु का उचित मूल्य, उत्पादन, वजन तथा उपयोग करने की अंतिम तिथि अवश्य देख लें।

(v) यदि खरीदी गई वस्तुओं अथवा सेवाओं की गुणवत्ता में कमी मिले तो इसकी शिकायत उपभोक्ता फोरम में करें।

(vi) किसी भी वस्तु को उपयोग में लाने से पहले उसके दिशा-निर्देशों का पालन करें।

(vii) पर्यावरण का ध्यान रखें। ऐसी चीजों के इस्तेमाल से बचे जिससे पर्यावरण दूषित होता है।

(vi) उपभोक्ता परिषद् का गठन करें जो उपभोक्ता शिक्षण उनके हितों को सुरक्षित रखने में सक्रिय रूप से भाग लेंगे।

(ix) कालाबाजारी तथा जमाखोरी जैसे अनुचित आचरणों को निरुत्साहित करें।

(x) बाजार में अपनी दृढ़ता एवं सूझबूझ का परिचय दे। अनजान लोगों की बातों में न पड़े।

प्रश्न 64. उपभोक्ता संरक्षण के उद्देश्यों को पूरा करने के लिए अपनाए जाने वाले साधनों का वर्णन कीजिए।

उत्तर- उपभोक्ता संरक्षण के तरीके एवं साधन-उपभोक्ता संरक्षण के कई तरीकों के बारे में ऊपर वर्णन किया गया है। इसके अतिरिक्त अन्य ऐसी कई विधियाँ हैं जिनसे उपभोक्ता संरक्षण के उद्देश्यो को पूरा किया जा सकता है।

1 व्यवसाय द्वारा स्वयं नियमन---- कई बड़ी व्यावसायिक इकाइयों का यह मानना है कि उपभोक्ताओं को अच्छी सेवा देना उनके अपने दीर्घकालीन हित में है। कई फर्म या इकाइयाँ उपभोक्ताओं की शिकायत सुनने या अपने उत्पाद के सम्बन्ध में उनकी राय जानने के लिए शिकायत कक्षो की स्थापना कर रही है। इस दिशा में उन्हें बहत हद तक सफलता भी मिली है। सामाजिक उत्तरदायित्वों को मानने वाली इकाइयां अपने ग्राहकों से व्यवहार एवं नैतिक मानक पर विश्वास करती है।

2. व्यावसायिक सगठन---- भारतीय वाणिज्य एवं औद्योगिक महासंघ (FICCI) एवं भारतीय उद्योगों का संगठन (CII) न अपना आचार-संहिता बनाई हुई है जिसमें उन्होंने अपने सदस्यों के लिए गाइडलाइन बनाई है जिसके तहत ही वे अपने ग्राहकों से व्यवहार करेंगे।

3. उपभोक्ता जागरूकता--- उपभोक्ता जागरूकता. उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम का सबस महत्त्वपूर्ण पहलू है। यदि उपभोक्ता जागरूक एवं जिम्मेदार है तो वह अपने अधिकारों को समझते हुए अपने हितो की रक्षा की आवाज उठाएगा। इस संदर्भ में भारत सरकार द्वारा कई जागरूकता मुहिम चलाई गई हैं जिसमें से "जागो ग्राहक जागो" नामक अभियान प्रमख है जिसका मुख्य उद्देश्य ग्राहको को अपने दायित्वों एवं अधिकारों के प्रति सजग करना है।

4. उपभोक्ता संगठन---- उपभोक्ता संगठन व्यावसायिक इकाइयों को अनुचित आचरण तथा उपभोक्ताओं के शोषण से दूर रहने के लिए बाध्य करता है। इन संगठनों का मुख्य उददेश्य उपभोक्ताओं को शिक्षित करने तथा उन्हें संरक्षण प्रदान करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

5. सरकार---- भारत के कानूनी ढाँचे में कई कानून हैं जो उपभोक्ताओं को संरक्षण प्रदान करते हैं। उदाहरण के लिए-भारत सरकार द्वारा जनहित के लिए उपभोक्ता हेल्प लाइन टोल फ्री न० 1800114000 स्थापित किया गया है जिसका उपयोग उपभोक्ता 9:30-5:30 बजे के मध्य तक कर

सकता है। इसी दिशा में उठाया गया कदम उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम 1986 है। इसमें तीन स्तरीय तंत्र का प्रावधान है जो इस प्रकार है--जिला, राज्य एवं राष्ट्रीय स्तर।

प्रश्न 65. उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 के तहत उपभोक्ताओं को उपलब्ध निवारण तंत्र की व्याख्या करें।

उत्तर- उपभोक्ताओं की शिकायतों के निवारण के लिए कार्यवाही करने हेतु उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 के अनुसार जिला, राज्य एवं राष्ट्रीय स्तर पर निम्नलिखित तन्त्रों की स्थापना की व्यवस्था हैं–

1. जिला फोरम--- जिला फोरम में एक अध्यक्ष और दो अन्य सदस्य अंतर्निहित होते हैं जिसमें से एक महिला होनी चाहिए। इन सभी की नियुक्ति राज्य सरकार करती है। ₹20 लाख या उससे कम मूल्य को वस्तओ या सेवाओं के लिए शिकायतो को इस एजेसी मे दर्ज कराया जा सकता है। यदि आवश्यक हो तो एजेसी वस्तओ को परीक्षण के लिए प्रयोगशाला में भेजती है और तथ्यों और प्रयोगशाला रिपोर्ट के आधार पर निर्णय देती है लेकिन यदि पीड़ित पक्षकार जिला फोरम के आदेश से संतष्ट नहीं है तोवर आदेश पारित होने के बाद 30 दिन के अंदर राज्य कमीशन के समक्ष अपील कर सकता है।

2. राज्य कमीशन----- इसमें एक प्रधान तथा कम-से-कम दो सदस्य होते है जिनमें एक महिला होनी चाहिए। भारत में 36 राज्य कमीशन है। अध्यक्ष उच्च न्यायालय का कार्यकारी न्यायाधीश या सेवानिवृत्ति प्राप्त न्यायाधीश होना चाहिए। वे सभी राज्य सरकार द्वारा नियुक्त किए जाते है। स आधक ₹1 करोड़ से कम मूल्य को वस्तुओं के लिए शिकायतें राज्य आयोग में दर्ज कराई है। शिकायत प्राप्ति के बाद राज्य स्तरीय आयोग शिकायत का उस पक्षकार को भाजगी शिकायत की गई है। यदि आवश्यक हो तो वस्तुओं का परीक्षण के लिए प्रयोगशाला में भेज सकते हैं लेकिन यदि पीडित राज्य कमीशन के आदेश से संतुष्ट नहीं है तो वह 30 दिन के अंदर राष्ट्रीय कमोशन के समक्ष अपील कर सकता है।

3 राष्टीय कमीशन--- राष्टीय कमीशन का एक प्रधान होता है तथा कम-से-कम चार दुसरे सदस्य होते है जिसमें से एक महिला हाना चाहिए। ये केंद्रीय सरकार द्वारा नियक्त किए जाते है राष्टीय कमीशन के अधिकार क्षेत्र में जम्मू कश्मीर के अतिरिक्त पूरा देश आता है यदि वस्तुओ का मूल्य ₹1 करोड़ से अधिक हो तब शिकायत को राष्ट्रीय आयोग में दर्ज करवाया जा सकता है। राष्ट्रीय कमीशन के समक्ष राज्य कमोशन के आदेश के विरुद्ध भी अपील का जाल राष्ट्रीय आयोग उस पक्ष को सूचित करता है जिसके विरुद्ध शिकायत दर्ज करवाई गई है और यदि आवश्यक हो तो वस्तुओं को परीक्षण के लिए भेजता है और अपना निर्णय देता है। यदि पीड़ित पक्ष निर्णय से संतुष्ट नहीं है तब

वे 30 दिन के अंदर सप्रीम कोर्ट में शिकायत दर्ज कर सकते हैं। इसका अर्थ यह है कि सिर्फ तभी अपील भारत के उच्चतम न्यायालय में की जा सकती है जब वस्तु तथा सवाआ का मूल्य क्षतिपूर्ति के दावे की राशि को मिलाकर 1 करोड़ से ज्यादा हो तथा पीडित पक्षकार राष्ट्राय कमोशन के आदेश से संतुष्ट न हो। जिन मामलों में फैसला जिला फोरम में लिया गया है उसकी पनः अपील राज्य स्तरीय आयोग के समक्ष की जा सकती है उसके बाद राज्य आयोग के आदेश को पुनः सनवाई राष्टीय आयोग में संभव है लेकिन इसके बाद किसी भी प्रकार की सुनवाई सम्भव नहीं है।

प्रश्न 66. उपभोक्ता संरक्षण के उददेश्य को किन विभिन्न तरीकों से हासिल किया जा सकता है? इस संबंध में उपभोक्ता संगठनों और गैर-सरकारी संगठनों की भूमिका की व्याख्या करें। NCERT]

उत्तर- उपभोक्ता संरक्षण के तरीके-उपभोक्ता को संरक्षण प्रदान करने के उद्देश्य की प्राप्ति के लिए निम्नलिखित तरीके अपनाए जा सकते है---

(i) व्यवसाय द्वारा स्वयं नियमन,

(ii) व्यवसाय संगठनों द्वारा स्वयं आचार-संहित बनाना,

(ii) उपभोक्ता जागरूकता,

(iv) उपभोक्ता संगठन,

(v) सरकार द्वारा कानून बनाना आदि।

उपभोक्ता संगठनों एवं गैर-सरकारी संगठनों (NGO's) की भूमिका---- भारत में उपभोक्ता संरक्षण के क्षेत्र में लगभग 500 उपभोक्ता संगठन काम कर रहे हैं। गैर-सरकारी संगठन ऐसे गैर लाभ संगठन हैं जो लोगों के हित के प्रवर्तन के लिए हैं। गैर-सरकारी संगठन तथा उपभोक्ता संगठन उपभोक्ताओं के हित तथा कल्याण के लिए निम्नलिखित कार्य करते हैं---

(i) विभिन्न ब्रांडों के गणों की जाँच प्रयोगशाला में करके इनके परिणामों को प्रकाशित करना।

(ii) जनसाधारण को उपभोक्ताओं के अधिकारों के सम्बन्ध में शिक्षित करना। इसके लिए विभिन्न प्रशिक्षण कार्यक्रम, सेमिनार तथा कार्यशालाओं का आयोजन करना।

(iii) उपभोक्ताओं की तरफ से उपयुक्त उपभोक्ता अदालत में शिकायत दर्ज कराना।

(iv) किसी व्यक्ति विशेष के हित में नहीं बल्कि जनसाधारण के हित में मुकदमा करने में पहल करना।

(v) उपभोक्ताओं को कानूनी सहायता प्रदान करना।

(vi) अनुचित व्यापारिक क्रियाएँ करने वाले विक्रेताओं का प्रतिवाद करना तथा उसके विरुद्ध कार्यवाही करने के लिए उपभोक्ताओं को प्रोत्साहित भी करना।

(vii) लोगों को गुणवत्ता चिह्नों; जैसे-SI mark, Ag mark इत्यादि के बारे में पूछने के लिए प्रेरित करना।

कुछ महत्त्वपूर्ण गेर----सरकारी संगठन (NGO's) तथा उपभोक्ता संगठन, उपभोक्ताओं के हितों में संरक्षण प्रदान कर रहे हैं, वे निम्नलिखित हैं---

(i) कॉमन कॉज, दिल्ली।

(ii) उपभोक्ता शिक्षण हितार्थ स्वयंसेवी संगठन (VOICE), दिल्ली।

(iii) उपभोक्ता समन्वय परिषद्, दिल्ली।

(iv) उपभोक्ता संरक्षण परिषद् (CPC), अहमदाबाद

(v) उपभोक्ता शिक्षण एवं अनुसंधान केंद्र (CERC), अहमदाबाद।

(vi) कंज्यूमर यूनिटी एंड ट्रस्ट सोसाइटी, (CUTS), जयपुर।

(vii) उपभोक्ता संगठन, कोलकाता।

(viii) कर्नाटक उपभोक्ता सेवा समिति, बंगलुरु।

(ix) मुंबई ग्राहक पंचायत, मुंबई।

(x) कंज्यूमर गाइडेंस सोसाइटी ऑफ इंडिया, (CGSI), मुंबई।